बुद्धशासनसुभाषित

सब्बरसं धम्मरसो जिनाति — १३२

अत्थो अत्थस्स नक्खत्तं किं करिस्सन्ति तारका १६७



संग्रह-कर्त्ता

महास्थविर वजिरञाण बरोरस

अनुवादक

भिक्षु नागसेन

प्रथम संस्करण]   बुद्धाब्द २५०६

प्रकाशक :
थाई विहार बुद्धगया (गया)

पूज्य
गुरुवर
के
श्री चरणों
में

मुद्रक :
स्टैण्डर्ड प्रिन्टर्स
शहीद रोड, गया
(भारत)

प्राक्कथन

पुस्तिका के मुख-पृष्ठ पर आप बुद्धशासन सुभाषित शब्द देखते हैं क्योंकि ५०० सुभाषितों मे ३२ थाई महारथविरों के सुभाषित भी सम्मलित है।

इन ५०० सुभाषितों का संग्रह त्रिपिटक से महारथविर वजिर बाण धरोरस (थाई लैड के दशवें संघराज ने किया था। थाई लैड में जो ३ वर्ष का "परियत्तिधर्म्म" का पाठ्य-क्रम है उसमें प्रथम वर्ष में इन ५०० सुभाषितों मे से एक निवन्ध सम्बन्धी प्रश्न-पत्र होता है। थाई लोग अपने दैनिक जीवन की बोल चाल मे ऐसे सुभाषितो का व्यवहार उसी प्रकार करते है जैसे भारत में कबीर आदि के दोहाओं का भारतीय। हम भारतीयो को भी इस प्रकार की सरल परन्तु सार-गर्भित वाणी का अपने दैनिक जीवन का बोल-चाल मे व्यवहार करना चाहिए वैसे तो धम्मपद की गाथाएँ सर्वोत्तम है ही और इन ५००) सुभाषितों मे भी १४३ धम्मपद से लिए गए है; परन्तु संग्रह की यह विशेषता है कि सुभाषित एक-एक पक्ति के है फल स्वरुप इनका कण्टस्थ करना सरलतर है। मैने अनुवाद करते हुए अर्थ को स्पष्ट करने की दृष्टि से शब्दाथ की अपेक्षा भावार्थ पर अधिक जोर दिया है जिससे कि भाषा क्लिष्ट न बन जाय।

भिक्षु महाजविन्द्र ने मुझसे आग्रह किया कि आप हिन्दी में बौद्ध धर्म विषयक कोई एक छोटी सी पुस्तिका लिखें। उन्होने कहा की प्रकाशन का प्रबन्ध थाई बिहार बुद्ध गया की ओर से किया जायगा। पिछले वर्ष भिक्षु महाजविन्द्र ने बौद्ध महासभा थाई लैड तथा नवयुवक

बौद्ध महासभा थाई लैड के तत्वावधान में "भारत मे बौद्ध धर्म" पर भाषण करते हुए भारत में भारतीय भाषाओ में नि:शुल्क वितरण के लिए बौद्ध धर्म-सम्बन्धी छोटी-छोटी पुस्तिकाओ के अभाव पर प्रकाश डालते हुए थाई लोगो को इस ओर धर्म-प्रचारार्थ ध्यान दिलाया। भाषण समाप्ति पर लोगो ने बड़ी तत्परता दिखाई और लगभग २००० टिक्कल एक लघु पुस्तिका के प्रकाशनार्थ दिया। यह धन पूर्वोक्त सभाओं के पास था। इसके अतिरिक्त सभाओ के कार्य कर्त्ताओं ने कहा कि पुस्तक छपने पर जो अधित व्यय होगा हम देगे।

अनुवाद पूर्ण हो जाने के पश्चात् मैने पाण्डुलिपि भिक्षु महाजविन्द्र के पास थाई-बिहार बुद्ध गया भेज दी; परन्तु भिक्षु महाजविन्द्र की अस्थाई-वास की दो वर्ष की अवधि लगभग समाप्त हो चुकी थी इसलिए थाई लैड आने की तैयारी मे वे इस पुस्तिका के प्रकाशन का प्रबन्ध न कर सके।

अभी पिछले दिनो श्री आनन्द भट्टाचार्य थाई-लैड अपने किसी कार्य-वश आए और उन्होने अपने बुद्ध श्रद्धा को किसी ठोस कार्य रुप मे परिणित करने के संकल्प को प्रकट किया। मैने उन्हे इन ५०० सुभाषितो के अनुवाद के बारे मे बताया। उन्होने इस ओर अपनी रुची प्रकट की और प्रकाशन में सहायक बनने का भार अपने उपर लिए। निस्सन्देह यदि भट्टाचार्य जी इसमें सहायक न होते तो पता नहीं इस पुस्तिका का प्रकाशन कब होता। श्री भट्टाचार्य जी ने केवल आर्थिक सहायता ही नहीं अपितु अनुवाद को सुधार कर भाषा को मधुर बनवाने में तथा प्रूफ देखने में उनका पूरा हाथ रहा है। थाई लागो ने ७००) रुपया तथा श्री भट्टाचार्य जी ने २००) रुपया दिया इसके लिए थाई लोगों, बौद्ध महासभा, नव युवक बौद्ध महासभा थाई लैंड तथा श्री भट्टाचार्य जी धन्यवाद के पात्र हैं।

त्रिपिटक में से जिस-जिस ग्रन्थ से ये सुभाषित चुने गए है उनका नाम अन्त में दे दिया गया है :—

ध	धम्मपद	म	मज्झिम निकाय
सं०	संयुक्तनिकाय	दी	दीघ निकाय
अं०	अगुत्तर निकाय	विमान	विमान वत्थु
सु०	सुत निपात	वि	विनय
जा	जातक	इ	इतिवुत्तक
उ	उदान		

जैसा ऊपर कहा गया ३२ थाई महास्थविरों के सुभाषित भी सम्मिलित है उनके नाम इस प्रकार है।

व० व०	महारथविर वजीरञाण वरोरस (संघराज)
स० स०	महारथविर सा 'संघराज'
स० छ०	सोमडेट बुद्धघोषाचार्य छिम Rama IV
र० र०	रत्नकोपेन्द्र-राज्य के चतुर्थ राजा
स० म०	सुवट मोन छबबं लुबङ् (परित्राण सम्बन्धि एक एक पुस्तक)

बेंकॉक
ति० ८-८-२५०६

भिक्षु नागसेन

PREFACE

I am very happy to see this Hindi translation of the Buddhist Proverbs When I went to India to stay for two years at Thai Temple, Buddhagaya, as one of the first group of five monks, I observed Buddhist activities there and felt a need for Buddist literature for free distribution. This is why when I was asked by the young Buddhist Association and the Buddhist Association of Thailand to lecture about "Buddhism in India" I appealed the audience to contribute for publication of booklets on Buddhism in Hindi language My appeal was promptly responded and a sum of 1800 Tcs. was collected. After having got this sum I asked Bhikkhu Nagasena to write some booklet in Hindi; and he has translated 500 Buddhist Proverbs selected by His Holiness Vajirananna Varorasa, the tenth Supreme Patriarch of Thailand.

I am very thankful to Mr. Anand Bhattacharya for his contribution of Rs. 200/- for this purpose. Last but not the least. Ven'able Dhammananda's interest is very praise-worthy in that he encouraged us to publish this book saying that in case of shortage of money he would arrange, and he did accordingly. He arranged for 2000 Tcs. but for his ready help the publication should have been delayed.

I hope that such useful and easy-to-understand booklets and pamphlets will be published in Hindi through Thai Temple, Buddhagaya. Since the propagation of the Lord Buddha's teaching is one of the aims of Thai Temple, I sincerely hope that Thai Buddhists will pay their attention to propagation work in India and make Thai Temple there an important centre for radiation of Buddha's philanthropic Teaching.

Bangkok
15—8—64

Phra Udornganadhikar
(Chawin Saragam)

संघराज वजिरञाणवरोरस

इनका जन्म १२ अप्रैल बुद्धाब्द २४०२ में हुआ। इनके जन्म का नाम मनुस्सनागमाणव था। ये वर्तमान रतनकोसिन्द्र (रत्नकोशेन्द्र) राज्य के चौथे राजा के सुपुत्र तथा पाँचवे राजा के अनुज थे। १४ वर्ष की आयु होने पर दो और राजकुमारों के साथ संघराज पवरेसवरियालङ्करण (आठवें संघराज) के पास प्रव्रज्या ले श्रामणेर बने; परन्तु प्रव्रज्या के ७८ दिन बाद ही काषाय वस्त्र छोड़ दिया। एक दिन उपज्झाय, संघराज पवरेसवरियालङ्करण, स्वप्न में दिखाई दिए और स्वप्न में ही कुछ वार्त्तालाप हुआ। दूसरे दिन प्रातः काल उठ उनके दर्शन के लिए गए। वहाँ जाने पर उन्हें यह जान कर बहुत ही आश्चर्य हुआ कि जो वार्त्तालाप स्वप्न में हुआ था वही वार्त्तालाप हुआ। काषाय वस्त्र छोड़ने के पश्चात् विहार में आना

जाना मानो वे भूल गए थे। परन्तु इस दिन से लेकर वे अपने उपाध्याय संघराज पवरेसवरियालङ्करण के पास धर्म-चर्चा के लिए बराबर आने जाने लगे। कालाम-सुत्तान्त मे ये सबसे अधिक अभिरुचि रखते थे। २० वर्ष की आयु होने पर संघ-राज पवरेसवरियालङ्करण के पास उपसम्पदा ले भिक्षु हो गए। और जब राजा को "पञ्चाङ्ग प्रतिष्ठ" हो अपने को नमस्कार करते देखा तो संवेग प्राप्त हो यह निश्चय किया कि आयुपर्यन्त भिक्षु रहेंगे।

थाईलैन्ड मे वर्त्तमान धार्मिक शिक्षा-प्रणाली के ये जन्म-दाता थे। इन्ही द्वारा लिखी पुस्तकें आज पालि तथा थाई भाषा में "परियत्ति-धम्म" शिक्षा के लिए पाठ्य-पुस्तको का काम देती है। महामकुटराज विद्यालय का बीज भी इन्ही द्वारा रोपा गया था। आज इस विद्यालय में भिक्षुओ को नवीन-शिक्षा-पद्धति के अनुसार पालि भाषा के अतिरिक्त अन्य अनेक विषयों की शिक्षा दी जाती है। धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त थाईलैन्ड में पाश्चात्य ढग की शिक्षा के प्रसार मे भी इनका बहुत हाथ रहा है। ये पालि के प्रकाण्ड विद्वान थे। इन्होने कई दर्जन थाई भाषा में पुस्तके लिखी जिनमें कुछ के नाम यहाँ दिए जाते है :—

(१) कम्मकिलेस कथा (२) दुक्ख [कविता] (३) पवरनिवेस-विहार-इतिहास (४) सुभासित [कविता] (५) उभय वाक्य [कविता] (६) विनय मुख (७) देवधम्म-कथा (८) पञ्ह-धम्म-विनिच्चय (९) रट्ठपसासननय (१०) सतिपट्ठानसुत्त तथा कम्मकिलेस कथा (११) समथ-कम्मट्ठान-हृदय (१२) पालि-व्याकरण (१३) कथामग्गसंवेजोपाय (१४) कथा पट्ठपन तथा अक्खर-विधान (१५) धम्म विचारण

इनमें तीन पुस्तके अर्थात् विनय मुख, पालि-व्याकरण तथा धम्म-विचारण सुप्रसिद्ध है। धम्म-विचारण का अनुवाद अंग्रेजी में हो चुका है। विनय-मुख थाई में "परियत्ति-धम्म के ३ वर्ष के पाठ्य-क्रम में पाठ्य-पुस्तक का काम देती है।

जब तक थाईलैंन्ड में बौद्ध-धर्म रहेगा इनका नाम सदैव बड़े आदर से लिया जाता रहेगा। बुद्ध के ये सेवक तथागत के अमृत-वचनों को सुनाते हुए ६२ वर्ष की आयु मे इस लोक से चले गए।





संघराज वजिरञाणवरोरस

नमो बुद्धाय

अत्तवग्गो—आत्मवर्ग

(१)

१ अत्ता हि अत्तनो नाथो। ध
मनुष्य अपना स्वामी आप है।

२ अत्ता हि अत्तनो गति। ध
दुर्गति अथवा सुगति की प्राप्ति अपनें पर ही निर्भर करती है।

३ अत्ता ह्वे जितं सेय्यो। ध
अपने पर विजय पाना ही सर्व श्रेष्ठ है।

४ अत्ता हि किर दुद्दमो। ध
अपने को दमन करना ही कठिन है।

(२)

५ अत्ता सुदन्तो पुरिस्स जोति। सं०
सुभावित चित्त प्रकाश के समान है।

६ अत्ता हि परम पियो। अं०
अपना आत्म हीं सबसे अधिक प्रिय है।

७ नत्थि अत्तसमं पेमं। अं०
अपने समान प्रिय कोई नहीं।

८ अत्तना व कत पापं अत्तना संकिलिस्सति। ध
अपना किया हुआ पाप अपने को ही मलिन करता है।

९ अत्तना अकतं पापं अत्तना व विसुज्झति । ध
मनुष्य स्वयं पाप नही करता इसलिए अपने आप शुद्ध हो जाता है ।

१० अत्तात्थपञ्ञा असुची मनुस्सा । सु
स्वार्थी मनुष्य अशुद्ध होते हैं ।

(३)

११ अत्तानं दमयन्ति पण्डिता । ध
पण्डित लोग अपने को दमन करते है ।

१२ अत्तानं दमयन्ति सुब्बता । ध
शुभकार्य-रत मनुष्य (सुव्रती) अपने को दमन करते है ।

(४)

१३ अत्तना हि सुदन्तेन नाथ लभति दुल्लभं । ध
अपने ही को भली भाँति दमन कर लेने से मनुष्य दुर्लभ शरण अर्थात् अर्हत्व (निर्वाण) की प्राप्ति करता है ।

१४ यो च रक्खति अत्तान रक्खितो तस्स बाहिरो । अं०
जो अपने मन को वश में रखता है, उसकी वाणी तथा शरीर भी स्वमेव वश में रहते है ।

(५)

१५ अत्तानञ्चे पियं जञ्ञा रक्खेय्य नं सुरक्खितं । ध
अपने को यदि प्रिय समझे तो अपने को सुरक्षित रखे ।

(६)

१६ परियोदपेय्य अत्तानं चित्तक्लेसेहि पण्डितो । ध
पण्डित अपने को चित्त-मलो से शुद्ध करे ।

१७ अत्तानञ्चे तथा कयिरा यथञ्ञमनुसासति । ध
जो शिक्षा दूसरों को दे उस पर स्वयं आचरण करे ।

१८ अत्तना चोदयत्तानं । ध
अपने को स्वयं प्रेरित करें ।

१६ पटिमासे अत्तमत्तना । ध
अपने को स्वयं कार्य में सलग्न करें ।

(७)

२० दुग्गा उद्धरथत्तानं पङ्के सन्नोव कुञ्जरो । ध
कीचड़ मे फँसे हाथी की तरह अपने को क्लेश रुपी दुर्गति से निकालो ।

२१ अत्तानुरक्खी भव मा अदय्हि । जा
अपनी रक्षा करें, अपने को शोकाकुल न करें ।

२२ अत्तानञ्च न वातेसि । जा
अपनी मृत्यु स्वयं न करें ।

(८)

२३ अत्तानं न ददे पोसो । सं०
परमार्थ की कामना रखने वाला को अपने को नही दे डालना चाहिए अर्थात् किसी को दासत्व स्वीकार न करे ।

(९)

२४ अत्तान न परिच्चजे । सं०
मनुष्य अपने को परित्याग न करे ।

२५ अत्तानं नातिवत्तेय्य । जा
अपने को अधिक (श्रेष्ठ) न आँके (गर्व न करें)

(१०)

२६ अत्तादत्थ परत्थेन बहुनापि न हापये । ध
दूसरे के बहुत हित के लिए अपने हित की हानी न करे ।

२७ अत्तानञ्चे पियं जञ्ञा न न पापेन संयुजे। स०
यदि अपने को प्रिय समझे तो पाप में न लगे।

२८ यथत्तगरही तदकुब्बमानो। सु
जिस कार्य से अपने को दोष लगता हो, उस कार्य को न करें।

२ अप्पमादु वग्गो—अप्रमाद वर्ग

(११)

२९ अप्पमादो अमतं पदं ध
अप्रमाद अमृत-पद का साधक है।

३० अप्पमादञ्च मेधावी धन सेट्ठं'व रक्खति। ध
बुद्धिमान अप्रमाद की रक्षा श्रेष्ठ धन की भाँति करता है।

३१ अप्पमादं पसंसन्ति। ध
पण्डित जन अप्रमाद की प्रशंसा करते हैं।

३२ अप्पमादे पमोदन्ति। ध
पण्डित जन अप्रमाद में प्रमुदित होते है।

३३ अप्पमत्ता न मीयन्ति। ध
अप्रमादी नहीं मरते।

३४ अप्पमत्तो हि झायन्तो पप्पोति विपुल सुखं। ध
अप्रमादी ध्यान करते हुए महान सुख को पाता है।

(१२)

३५ अप्पमत्ते उभो अत्थे अधिगण्हाति पण्डितो। ध
प्रमाद-रहित पण्डित दोनों अनर्थो को प्राप्त करता है।

(१३)

३६ अप्पमादेन सम्पादेथ। सं०
अप्रमाद द्वारा (निर्वाण का) सम्पादन करो।

३७ अप्पमादरता होथ घ
अप्रमाद में रत होओ ।

३ कम्म वग्गो—कर्म वर्ग

३८ कम्मं सत्ते विभजति यदिद हीनप्पणीतताय । म०
कर्म सत्वों को हीन तथा प्रणीत में विभाजित करता है ।

३९ यङ्किञ्चि सिथिलं कम्मं न तं होति महप्फलं । स०
शिथिलता से किया गया कार्य महाफलदायक नहीं होता ।

४० सानि कम्मानि नयन्ति दुग्गतिं । ध
अपने ही (बुरे) कर्म दुर्गति तक पहुँचाते है ।

४१ सुकरं साधुना साधु । उ
अच्छे मनुष्य के लिए निर्दोष कर्म करना सरल है ।

४२ साधुपापेण दुक्करं । उ
पापी के लिए निर्दोष कर्म करना कठिन है ।

४३ अकतं दुक्कटं सेय्यो । ध
दोष-युक्त कर्म न करना ही अच्छा है ।

४४ पच्छा तप्पति दुक्कर । ध
दुष्कृत करने वाला पीछे अनुताप करता है ।

४५ कतञ्च सुकतं सेय्यो । ध
दोष रहित (सुकृत) कर्म करना श्रेष्ठ है ।

४६ न तं कम्मं कतं साधु यं कत्वा अनुतप्पति । ध
वह कर्म करना ठीक नही जिसे करके पीछे पछताना पड़े ।

४७ नञ्च कम्मं कतं साधु य कत्वा नानुतप्पति । ध
उसी कर्म को करना ठीक है जिसे करके पीछे पछताना न पड़े ।

४८ सुकरानि असाधूनि अत्तनो अहितानि च । ध

दोषयुक्त कर्म करना तथा अपना अहित करना बहुत सरल है ।

४९ यं वे हितञ्च साधुञ्च तं वे परम दुक्कर । ध

उस कर्म को करना दुस्कर है । जो दोष रहित तथा हितकर है ।

५० न हि त सुलभं होती सुखं दुस्कटकारिना । स०

पाप करने वाले को सुख सुलभ नही ।

५१ कल्याणकारी कल्याणं पापकारी च पापकं । जा

अच्छा करने वाला अच्छा फल, बुरा करने वाला बुरा फल पाता है । (जैसी करनी वैसी भरनी)

(१४)

५२ कम्मुना वत्तती लोको । म

कर्मानुसार प्राणियों की गति होती है ।

५३ निसम्म करण सेय्यो । व०व०

भली भांति पहले विचार कर पीछे कार्य करना श्रेष्ठ है ।

५४ कतस्स नत्थि पटिकार । स०स०

जो कार्य कर दिया उसका प्रतिकार नही किया जा सकता ।

५५ पटिकच्चेव त कयिरा य जञ्ञा हितमत्तनो । स०

जिस कार्य में अपना हित समझे उसे तुरन्त करना चाहिए ।

५६ कयिरा चे कयिरथेन । ध

यदि करना ही है तो उसे (दत्तचित्त होकर) करे ।

५७ करेय्य वाक्यं अनुकम्पकानं । जा

अपने पर अनुकम्पा करने वाले की शिक्षानुसार कार्य करे ।

५८ कालानुरुप व धुर नियुञ्जे । व०व०

उचित समय देख अपने कार्य में लगना चाहिए ।

५९ रक्खेय्य अत्तनो साधुं लवणं लोणतं यथा। स० स०
मनुष्य अपनी अच्छाइयों की रक्षा उसी प्रकार करे जैसे नमक नमकीनपन की।

६० किच्चानुकुब्बस्स करेय्य किच्च। जा
कार्य में सहायक का कार्य करना चाहिए।

६१ नानत्थकामस्स करेय्य अत्थं। जा
उसकी सहायता न करे जो अनर्थ करने पर तुले हुए है।

६२ मा च सावज्जमागमा। स० छ०
दोष युक्त कार्य मत करो।

४ किलेस वग्गो—क्लेश वर्ग

(१५)

६३ सङ्कप्परागो पुरिसस्स कामो। स०
राग-युक्त मन हो जाना ही पुरुष का काम है।

६४ न सन्ति कामा मनुजेसु निच्चा। स०
मनुष्य में काम नित्य नहीं है (काम क्षण-भंगुर है)।

६५ कामेहि लोकम्हि न हत्थि तित्ति। म०
संसार में काम से तृप्ति नहीं हो सकती।

६६ न कहापणवस्सेन तित्ति कामेसु विज्जति। ध
यदि कार्षापणों (रुपयों) की वर्षा हो, तो भी मनुष्य की कामों (भोगों) की तृप्ति नहीं हो सकती।

६७ नत्थि कामा परं दुक्खं। जा
काम (से उत्पन्न दुःख के) समान कोई दुःख नहीं।

(१६)

६८ नत्थि तण्हा समा नदी। ज
तृष्णा के समान नदी नहीं।

६९ इच्छा लोकस्मिं दुज्जहा।
लोक में इच्छा छोड़ना बहुत कठिन है।

(१७)

७० इच्छा हि अनन्त गोचरा। जा
इच्छा अनन्त आलम्बन वाली है (इच्छाएँ अनन्त है)।

७१ इच्छा नरं परिकस्सति। स०
इच्छा मनुष्य को (एक भव से दूसरे भव में खींचती है।

७२ नत्थि रागसमो अग्गि। ध
राग के समान अग्नि नहीं।

७३ लोभो धम्मान परिपन्थो। स०
लोभ (कुशल) धर्मों का घातक है।

७४ अतिलोभो हि पापको। जा
कृपणता निश्चय ही पाप है।

(१८)

७५ नत्थि मोहसमं जालं।
मोह के समान जाल नहीं।

७६ भिय्यो च कामे अभिपत्थयन्ति। म० हैं
काम भोगी कामों में (भोगों में) अधिकाधिक चाह करते हैं।

७७ ऊना व हुत्वा जहन्ति देहं। म०
काम भोगी अतृप्त ही देह का त्याग करते हैं।

७८ भोगतण्हाय दुम्मेधी हन्ति अञ्ञेव अत्तानं। ध
दुर्बुद्धि भोग तृष्णा के कारण दूसरे के भांति अपना ही हनन करता है।

७९ अविज्जानिवुता पोसा। अ०
मनुष्य अविद्या से ढके हुए हैं।

५ क्रोधवग्गो—क्रोध वर्ग

८० न हि साधु कोधो। जा

क्रोध करना अच्छा नहीं।

८१ कोधो सत्यमलं लोके। स०

क्रोध शस्त्रमल (जङ्ग) के समान है।

८२ अनत्थजनन नो कोधो अं०

क्रोध विनाश का कारण है।

८३ कोधो चित्तप्पकोपनो। अ०

क्रोध मन को बेचैन करने वाला है।

८४ अन्धतम तदा होति य कोधो सहते नरं। अं

जब मनुष्य क्रोधित होता है तब तब उसके सामने अन्धेरा होता है।

८५ अप्पो हुत्वा बहु होति बड्ढते सो अखन्तिजो। जा

अल्प क्रोध अशांति के कारण बहुत हो जाता है।

८६ कोधो दुम्मेध गोचरो। ध

दुर्बुद्धि मनुष्य में ही क्रोध होता है (क्रोध अज्ञता का लक्षण है)।

८७ दोसो कोधसमुट्ठानो। जा

क्रोध ही द्वेष-भाव का कारण है।

८८ नत्थि दोससमो गहो। ध

द्वेष के समान ग्रह नही।

८९ कोधं घत्वा सुखं सेति। स०

मनुष्य क्रोध को मार कर प्रसन्न-चित रहता है।

९० नत्थि दोष समो कलि।

द्वेष के समान पाप नही।

९१ क्रोधं घत्वा न सोचति। स०
क्रोध को मार कर मनुष्य चिन्तित नही होता।

९२ कोधाभिभूतो कुसल जहाति। जा
क्रोध से अभिभूत मनुष्य कुशल (धर्मों) को छोड़ देता है।

९३ कोधनो दुब्बण्णो होति। अ०
क्रोधित दुर्वर्ण (कान्ति-रहित) होता है।

९४ दुक्खं सयति कोधनो। अ०
क्रोधी दुःख का जीवन बिताता हैं।

९५ अथो अत्थं गहेत्वा अनत्थ पटिपज्जति। अ०
क्रोधी अपने हित को सोचता हुआ भी अपना अहित करता है।

९६ कोधाभिभूतो पुरिसो धनजानिं निगच्छति। अ०
क्रोधी अपनें धन के नाश को प्राप्त होता है।

९७ कोध सम्मदसम्मत्तो आयसक्य निगच्छति। अ०
क्रोध से प्रमत मनुष्य अपने यश को नष्ट करता है।

९८ ञातिमित्ता सुहज्जा च परिवज्जजेन्ति कोधनं। अ०
सम्बन्धी-मित्र-सहायी क्रोधी मनुष्य का साथ नही देते

(२०

९९ कुद्धो अत्थ न जानाति। अ०
क्रोधी अर्थ-भलाई (अथवा कार्य-कारण) को नही जानता।

(२१)

१०० कोधो धम्म पस्सति। अ०
क्रोधी धर्म (अथवा कार्य-फल) को नहीं देखता (समझता)।

१०१ यं कुद्धो उपरोधेति सुकरं बिय दुक्करं। अ०
क्रोध में आकर मनुष्य जितनी सरलता से किसी वस्तु को

नष्ट करता है अक्रोध की अवस्था में उस वस्तु को नष्ट करना उतना ही कठिन है।

१०२ पच्छा सो विगते कोधो अग्गि दड्ढोव तप्पति। अ०
क्रोध उतर जाने के बाद मनुष्य आग से जलने के समान तपता है।

१०३ कोधेन अभिभूतस्स न दीप होति किञ्चिन। अ०
क्रोधाभिभूत के लिये कोई रक्ष-स्थान (द्वीप) नही।

१०४ हन्ति कुद्धो समातर। अ०
क्रोधी मनुष्य अपनी माता को भी मार सकता है।

१०५ कधजातो पराभावो। अ०
क्रोधित मनुष्य पतित है।

१०६ कोधं दमेन उच्छिन्दे। अ०
क्रोध को दम (रुपी चाकू) से काटे।

१०७ कोधं दमेन उच्छिन्दे। अ०
क्रोध की प्रज्ञा (रुपी चाकू) से काटे।

१०८ मा कोधस्स वसं गाम। जा
क्रोध के वश में नहीं होना चाहिए।

(२२)

६ खन्ति वग्गो—क्षांति वर्ग

१०९ खन्ति परम तपो तितिक्खा। ध
सहन-शीलता, क्षमा-शीलता परम तप है।

११० खन्ति साहसवारणा। व० व०
क्षांति अविहित (अनुचित) कार्य करने की उत्सुकता को रोकती है।

१११ खन्ति हित सुखावहा। स०म०
क्षान्ति हित और सुखदायक है।

११२ खन्ति धीरस्सलङ्कारो ।
क्षान्ति ज्ञानी पुरुष का अलंकार है ।

११३ खन्ति तपो तपस्सिनी ।
क्षान्ति ही तपस्वियो का तप है ।

११४ खन्ति बलं व यतीनं ।
क्षान्ति ही तपस्वियों का बल है ।

११५ खन्ति बला समण ब्राह्मणा ।
क्षांति श्रमण तथा ब्राह्मण (वाहित पापो जिसने अपने पाप को धोकर बहा दिया है) का बल है ।

११६ मनापो होति खन्तिको ।
सहन-शील मनुष्य सबका प्रिय होता है ।

७ चित्त वग्गो – चित्त वर्ग

११७ चित्ते सङ्किलिट्ठे दुग्गति पाटिकखा ।
चित्त के मलिन होने पर दुर्गति आवश्यक है ।

११८ चित्ते असङ्किलिट्ठे सुगति पाटिकखा ।
चित्त के मलिन न होने पर सुगति आवश्यक है ।

(२३)

११९ चित्तेन नीयति लोको ।
चित्त के अनुसार प्राणियों की गति होती है ।

१२० चित्तस्य दमथो साधु ।
चित्त का दमन करना उत्तम है ।

(२४)

१२१ चित्तं दन्तं सुखावहं ।
सुरक्षित चित्त सुखदायक होता है ।

१२२ चित्तं गुत्तं सुखावह | इ
सुरक्षित चित्त सुखदायक होता है ।

१२३ विहञ्ञति चित्तवसानुवत्ती । | जा
चित्त के अनुसार कार्य करने वाला परेशान होता है ।

१२४ चित्तं अत्तना उजुकमकंसु । | दी
पण्डित पुरुष अपने चित्त को सीधा (मल-रहित) करते है ।

१२५ सचित्तपरियाय कुसला भवेय्यं । | अ०
अपने चित्त को संयमित करने मे चतुर होना चाहिए ।

१२६ तेलपत्तं यथा परिहरेय्य एवं सचित्तमनुरक्खे । | जा
तेल से भरे पात्र को ले जाने वाले की तरह चित्त की रक्षा करे ।

१२७ सचित्तमनुरक्खथ । | ध
अपने चित्त की रक्षा करे ।

१२८ चित्तं रक्खेथ मेधावी । | ध
बुद्धिमान पुरुष चित्त की रक्षा करे ।

१२९ यतो यतो च पापकं ततो ततो मनो निवारये । | स०
जिस-जिस आलम्बन से पाप पैदा होता है उस-उस आलम्बन से चित्त को हटाएँ ।

८ जय वग्गो—जय वर्ग

१३० जयं वेरं पसवति । | ध
जय वैर को पैदा करती है ।

१३१ सब्बदानं धम्मदानं जिनाति । | ध
धर्मदान सब दानों से बढ़कर है ।

१३२ सब्बरसं धम्मरसो जिनाति । | ध
धर्म-रस सब रसों मे बढ़कर है ।

१३३ सब्बरतिं धम्मरति जिनाति।
धर्म में रति सब रतियों से बढ़कर है।

१३४ तण्हक्खयो सब्बदुक्ख जिनाति।
तृष्णा-क्षय सब दुखों को जीत लेता है।

१३५ न तं जितं साधु जितं य जितं अवजिय्यति।
वह विजय उत्तम नहीं जो भविष्य मे पराजय में बदल जाय।

१३६ तं खो जित साधु जितं यं जित नावजिय्यति।
वही विजय उत्तम है जो बाद में पराजय में नहीं बदलती।

१३७ अक्कोधेन जिने कोधं।
अक्रोध से क्रोध को जीते।

१३८ असाधुं साधुना जिने।
अच्छाई से बुराई को जीते।

१३९ जिने कदरियं दानेन।
लालची को दान से जीते।

१४० सच्चेनालिकवादिनं।
सत्य से असत्यवादी को जीते।

९ दानवग्गो—दान वर्ग

(२९)

१४१ दानञ्च युद्धञ्च समानमाहु।
दान और युद्ध समान होते हैं।

१४२ नत्थि चित्ते पसन्नम्हि अप्पका नाम दक्खिणा विमान।
श्रद्धा से प्रसन्न चित्त से दिया दान अल्प नहीं कहा जाता।

१४३ विचेय्य दान सुगतप्पसत्थं।
विवेक करके दान देना बुद्ध द्वारा प्रशंसित है। (बुद्ध विवेक कर दान देने की प्रशंसा करते हैं)

१४४ बाला हवे नप्पसंसन्ति दानं । ध
वे मूर्ख ही है जो दान के प्रशंसा नही करते

१४५ ददं मित्तानि गन्थति । स०
देने से सभी मित्र हो जाते है ।

१४६ ददं पियो होति भजन्ति नं बहू । अ०
देने वाला प्रिय होता है, बहुत लोग उसके साथी हो जाते है।

१४७ ददमानो पियो होति । अ०
देने वाला प्रिय होता है ।

१४८ सुखस्स दाता मेधावी सुखं सो अधिगच्छति । अ०
बुद्धिमान् दूसरों को सुख देने वाला स्वयं सुखलाभी होता है ।

१४९ सेट्ठन्ददो सेट्ठमुपेति ठानं । अ०
श्रेष्ठ वस्तु का दान देने वाला श्रेष्ठ अवस्था को प्राप्त करता है ।

१५० अग्गस्स दाता लभते पुनग्गं । अ०
अग्र (उत्तम वस्तु) को देने वाला अग्रावस्था को पाता है ।

१५१ ददतो पुञ्ञं पवड्ढति । उ०
देने वाले का पुण्य पढ़ता है ।

१५२ ददेय्य पुरिसो दानं । जा
मनुष्य को दान देना चाहिए ।

१० दुक्खवग्गो—दुःख वर्ग

१५३ नत्थि खन्धसमा दुक्खा । ध
पंच स्कन्ध के समान दुःख नही ।

१५४ संखारा परमा दुक्खा । ध
संस्कार परम दुःख हैं ।

१५५ दुरावासा घरा दुक्खा ।
अव्यवस्थित घर दुःखद है ।

१५६ दद्दिद्दियदुक्खं लोके ।
लोक में दरिद्रता (गरीबी) दुःख है ।

१५७ इणादानं दुक्खं लोके ।
ऋणि होना लोक मे दुख है ।

१५८ दुक्खं अनाथो विहरति ।
अनाथ (शरण रहित) दुःखी होता है ।

१५९ दुक्खं सेति पराजितो ।
पराजित दुःख से सोता (रहता) है ।

१६० अकिञ्चन नानुपतन्ति दुक्खा ।
अकिंचन (चिन्ता-रहित) को दुखः नहीं ।

११ धम्मवग्गो—धर्म वर्ग

१६१ धम्मो रहदो अकद्दमो ।
धर्म स्वच्छ सरोवर की भांति है ।

(२८)

१६२ मनोपुब्बङ्गमा धम्मा ।
मन सभी धर्मों का अगुआ हैं ।

१६३ धम्मो हि इसिनं धजो ।
धर्म ही ऋषियों का ध्वजा हैं ।

१६४ सत धम्मो दुरन्वयो ।
सत्पुरुष के धर्म को जानना कठिन है ।

(२६)

१६६ सतं च धम्मो न जरं उपेति । ध
सन्तों का धर्म जरा को प्राप्त नही होता ।

१६७ सद्धम्मो सब्भि रक्खितो । दी
सत्पुरुष सद्धर्म की रक्षा करते ही है ।

१६८ धम्मो सुचिण्णो सुखमावहाति । जा
धर्मानुसार चलने पर धर्म सुखद होता है ।

१६९ सब्बेसं सहितो होति सद्धम्मे सुपतिट्ठितो । अं०
धर्म मे सुप्रतिष्ठित मनुष्य सब मनुष्यो का हितकारी होता है ।

१७० धम्मपोती सुखं सेति ।
धर्म-रस का पान करने वाला सुखी जीवन व्यतीत करता है ।

१७१ धम्मचारी सुखं सेति । ध
धर्म पर आचरण करने वाला सुख पूर्वक रहता है ।

१७२ धम्मो हवे रक्खति धम्मचारी । जा
धर्मचारी की रक्षा धर्म करता है ।

१७३ न दुग्गतिं गच्छति धम्मचारी । जा
धर्मचारी दुर्गति को प्राप्त नही होता ।

१७४ धम्मे ठितं न विजहाति कित्ति ।
यश-कीर्त्ति धर्म में सुप्रतिष्ठित का त्याग नहीं करती ।

१७५ धम्मे ठिता ये न करोन्ति पापकं । अं०
धर्म पर चलने वाले पापाचरण नही करते ।

१७६ सब्बे धम्मा नालं अभिनिवेसाय । म०
सभी धर्मो में अभिनिवेश (आसक्ति) नही करनी चाहिए ।

(३०)

१७७ योनिसो विचिने धम्मं अं०
भली भाँति विचार कर धर्म को चुनना चाहिए ।

(३१)

१७८ धम्मं चरे सुचरितं । ध
धर्म पर आचरण सुचरित्रता को ध्यान में रखते हुए करे ।
(धर्म के लिए ही धर्म का आचरण करे ।)

१७९ सद्धम्मो गरु कातब्बो । अं०
सद्धर्म का सत्कार करना चाहिए ।

१८० कण्हं धम्मं विप्पहाय । ध
पण्डित कृष्ण-धर्म (पाप) को छोड़े ।

१८१ सुक्कं भावेय पण्डितो । ध
पण्डित शुक्ल-धर्म (कुशल धर्म) का अभ्यास करे ।

१२ पकिण्णकवग्गो—प्रकीर्ण वर्ग

(३२)

१८२ अट्ठङ्गिको च मग्गानं खेमं अमतगामिनं । म
सब मार्गों में केवल आर्याष्टांग ही ऐसा एक मार्ग है जो
क्षेम तथा अमृत-पद पहुँचाने वाला है ।

१८३ विसुद्धि सब्बकिलेसेहि होति दुक्खेहि निब्बुति । र० र०
सब क्लेशों से शुद्ध होने पर दुःख दूर हो जाता है ।

१८४ यं किञ्चि समुदयधम्मं सब्बं तं निरोध धम्मं । सं०
जो कुछ पैदा होने वाला है वह सब निरोध होने वाला है
(पैदा है सो नपैद है)

१८५ यथा पच्चयं पवत्तन्ति । र० र०
संस्कृत वस्तुएँ अपने हेतु-प्रत्यय पर आश्रित हैं ।

१८६ आरोग्य परमा लाभ । ध
आरोग्य परम लाभ है ।

१८७ जिघच्छा परमा रोगा । ध
भूख एक बड़ा भारी रोग है ।

१८८ संखारा सस्सता नत्थि । ध
संस्कार शाश्वत नहीं ।

१८६ अनिच्चा वत संखारा । सं०
संस्कार अनित्य है ।

१६० दुल्लभा खणसम्पत्ति । स० म०
उचित अवसर (समय) प्राप्त होना दुर्लभ है ।

१६१ दुल्लभ दस्सनं होति सम्बुद्धानं अभिण्हसो । म०
सदैव बुद्धों का दर्शन दुर्लभ है ।

१६२ खणो वो उपच्चगा । ध
अवसर को नष्ट मत करो । (अवसर पर मत चूको)

१६३ अतिपतति वयो खणो तथेव । जा
एक क्षण के समान आयु-क्षय होता है ।

१६४ कालो घसति भूतानि सब्बानेव सहत्तना । जा
काल (समय) प्राणियों तथा स्वयं को खा जाता है ।

१६५ इति विस्सट्ठकम्मन्ते अत्था अच्चेति माणवे । दी
अपने कर्त्तव्य में प्रमाद करने वाला युवक अपने हित को नष्ट कर देता है ।

१६६ नक्खत्तं पटिमानेन्तं अत्थो बालं उपच्चगा । जा
मूर्ख नक्षत्र पर विश्वास कर अवसर को खो बैठता है ।

१९७ अत्थो अत्थस्स नक्खत्त किं करिस्सन्ति तारका। जा
अवसर की प्राप्ति ही शुभ-शकुन है, तारे क्या करेंगे।

१९८ वसो इस्सरियं लोके। सं०
लोक में प्रभुता एक बड़ी चीज है।

१९९ सिरि भोगाननमासयो। सं०
यश-कीर्ति से भोग-सम्पत्ति प्राप्त होती है।

२०० किच्छा वुत्ति असिप्पस्स। जा
शिल्प न जानने वाले का जीविका कठिन होती है।

२०१ साधु खो सिप्पकं नाम अपि यादिसकीदिसं। जा
शिल्प चाहे किसी भी तरह का हो अच्छा ही होता है।

२०२ मत्तञ्ञुता सदा साधु। व० व०
मात्रज्ञ होना सदा अच्छा है
(मध्यम मार्ग पर चलना सदैव श्रेष्ठ है)

(३३)

२०३ हिरि ओत्तप्पयञ्ञेव लोकं पालेति साधुकं। व० व०
ह्री तथा अपत्रपा (संकोच) लोक-रक्षक हैं।

२०४ लोकोपत्थम्भिका मेत्ता। व० व०
मैत्री लोक को सभालने वाली है।

२०५ अरति लोकनासिका। व० व०
ईर्षा लोक को नष्ट करने वाली है।

२०६ महापुरिसभावस्स लक्खणं करुणासहो। व० व०
करुणा के कारण (दूसरे के दुःख को) सहन न कर सकना महापुरुष का लक्षण है।

२०७ निमित्तं साधुरुपानं कतञ्ञूकतवेदिता। स० स०
कृतज्ञता तथा अपने प्रति किए के बदले में दूसरे
का कार्य करना सतपुरुष का लक्षण है।

२०८ सब्बञ्चे पठविं दज्जा नाकतञ्ञुमभिराधये। जा
सारी पृथ्वी को भी देकर अकृतज्ञ को सन्तुष्ट
नहीं किया जा सकता।

२०९ हनन्ति भोगा दुम्मेधं। ध
भोग-सामग्री दुर्बुद्धि का हनन करते है।

२१० सक्कारो कापुरिसं हन्ति। सं०
सत्कार का पुरुषता को नष्ट कर देता है।

२११ किच्छो मनुष्य पटिलाभो। ध
मनुष्य का जन्म पाना कठिन है।

२१२ किच्छं मच्चानं जीवितं। ध
मनुष्यों को बड़ी कठिनता के साथ जीवन चलाना पड़ता है।

२१३ किच्छं सद्धम्मसवणं। ध
सद्धर्म का श्रवण करना कठिन है।

२१४ किच्छो बुद्धानमुप्पादो। ध
बुद्धों का उत्पन्न होना कठिन है।

२१५ असज्झायमला मन्ता। ध
पाठ न करते रहना मन्त्रों का मैल है।

२१६ अनुट्ठानमला घरा। ध
झाड़-बहार न करना घर का मैल है।

२१७ मलं वण्णस्स कोसज्जं। ध
आलस्य वर्ण (सौन्दर्य) का मैल है।

२१८ मलित्थिया दुच्चरितं। ध
दुराचार स्त्री का मैल है।

२१९ सुद्धि असुद्धि पच्चत्तं। ध
शुद्धि और अशुद्धि अपने ही से होती है।

२२० नाञ्ञो अञ्ञं विसोधये। ध
दूसरा मनुष्य दूसरे को शुद्ध नहीं कर सकता।

२२१ सुद्धस्स सुचिकम्मस्स सदा सम्पज्जते वतं। म०
शुद्ध, शुचिकर्म करने वाले के संकल्प (व्रत सदैव पूरे होते है)

२२२ सुदस्सं वज्जमञ्ञेसं अत्तनो पन दुद्दसं। ध
दूसरे के दोष देखना सरल है परन्तु अपने दोष देखना कठिन है।

२२३ नत्थि लोके रहो नाम पापकम्मं पकुब्बता। जा
पाप कर्म करने वाले के लिए लोक में कोई
गुप्त स्थान नहीं (आज नहीं तो कल पाप प्रकट हो जाता है)

२२४ नेसा सभा यत्थ न सन्ति सन्तो। जा
जिस सभा में सत्पुरुष नहीं वह सभा नहीं।

२२५ नत्थेतं लोकास्मिं य उपादियमानं अनवज्जं अस्स। र० र०
लोक में किसी भी वस्तु के प्रति आसक्ति दोष-रहित नहीं।

२२६ भोगा सन्निचयं यन्ति वम्मिकोवूपचीयति। दी०
घर को अच्छी तरह चलानें वाले की भोग-सम्पत्ति
वल्मीक की तरह बढ़ती हैं।

२२७ अलं बालस्स मोहाय न च पारगवेसिनो। म
सुन्दर रुप मूर्ख को मोह लेता है, निर्वाण-गवेषी को नहीं।

२२८ रूपं जरिति मच्चानं नामगोत्तं न जरिति। सं०
मनुष्यों के शरीर जीर्ण हो जाते है, नाम-गोत्र जीर्ण नहीं होते।

२२९ शीनं भावो दुराजनो । जा
स्त्री का स्वभाव जानना कठिन है ।

२३० उक्कट्ठे सूरमिच्छन्ति । जा
अवसर आने पर वीर पुरुष की आवश्यकता होती है ।

२३१ प्रियञ्च अन्नपानम्हि । जा
(समृद्धि) अन्नपान होने पर प्रिय जनों की चाह होती है ।

२३२ मन्तीसु अकुतूहं । जा
मंत्रणा के लिए असंगत बात न करने वाले की आवश्यकता है ।

२३३ अत्थे जाते च पण्डित । जा
समस्या उपस्थित होने पर विद्वान् की आवश्यकता है ।

२३४ आपदासु थामो वेदितब्बो । उ
संकट पड़ने पर ही मानसिक-शक्ति जानना चाहिए ।

२३५ यसो लद्धा न मज्जेय्य । जा

२३६ चागमनु ब्रूहेय्य । म
सदैव त्याग-भावना की वृद्धि करनी चाहिए ।

२३७ सन्तिमेव सिक्खेय्य । उ
शान्त-धर्म की प्राप्ति के लिए ही शिक्षा लेनी चाहिए ।

२३८ लोकामिस पजहे सन्ति पेक्खो । सं०
शान्ति चाहने वाले को लोकामिष (भोग) छोड़ने चाहिए ।

२३९ त गण्हेय्य यदप्पण्णकं । जा
जो धर्म दोष-रहित है उसको ग्रहण करे ।

२४० सम्मुखा यादिसं चिण्णं परम्मुखापि तादिसं । स०स०
जैसा सम्मुख आचरण करे वैसा ही पीछे करो ।

२४१ अप्पत्तो नो च उल्लपे । स०स०
जिस वस्तु को अभी आप ने प्राप्त नही किया
उसके बारे में शेखी न मारे ।

(३४)

२४२ सनाथा विहरथ मा अनाथा । अं०
सनाथ होकर विचरण करो अनाथ होकर नहीं ।

२४३ नाञ्ञं निस्साय जीवेय्य । उ०
दूसरों के आश्रय पर नहीं रहना चाहिए ।

२४४ आरोग्यमिच्छे परमञ्च लाभं । जा
आरोग्य, जो कि परम लाभ है, की इच्छा करे ।

२४५ अतीतंनान्वागमेय्य । स०
अतीत के पीछे न जाए (अतीत का चिन्तन न करे)

२४६ नप्पटिकङ्खे अनागतं । उ
भविष्य में (किसी भी वस्तु की) चाह न करे ।
(भविष्य के लिए मनसूबे न बाँधे)

१३ पञ्ञा वग्गो—प्रज्ञा-वर्ग

२४७ नत्थि पञ्ञासमा आभा । सं०
प्रज्ञा के समान प्रकाश नही ।

२४८ पञ्ञा लोकस्मिं पज्जोतो । सं०
प्रज्ञा लोक में प्रकाश है ।

२४९ योगा व जायती भूरि । ध
(ध्यान) योगाभ्यास से प्रज्ञा उत्पन्न होती है ।

२५० अयोगा भूरिसङ्खयो । ध
योगाभ्यास (ध्यान-भावना) न करने से प्रज्ञा क्षय को प्राप्त हो जाती है ।

२५१ सुखो पञ्ञापटिलाभो। ध
प्रज्ञा की प्राप्ति सुखद है।

२५२ पञ्ञा नरानं रतनं। सं०
प्रज्ञा मनुष्यों के लिए रत्न के समान है।

२५३ पञ्ञा वे धनेन सेय्यो। सं०
प्रज्ञा धन दौलत से भी अच्छी है।

२५४ नत्थि झानं अपञ्ञस्स।
अप्रज्ञ मन को एकाग्र नहीं कर सकता।

२५५ पञ्ञा नत्थि अझायतो। ध
ध्यान नकरने वाले को प्रज्ञा उत्पन्न नहीं हो सकती।

२५६ पञ्ञा चेनं पसासति। सं०
मनुष्य प्रज्ञा से प्रशासित होते है।

२५७ पञ्ञाय मग्गं अलसो न विन्दति। ध
आलसी केवल प्रज्ञा द्वारा प्राप्त करने योग्य
मार्ग को प्राप्त नहीं कर सकता।

२५८ सुस्सूसं लभते पञ्ञं। सं०
दत्त-चित्त हो सुनने से प्रज्ञा की प्राप्ति होती है।

२५९ पञ्ञायत्थं विपस्सति। अं०
प्रज्ञा द्वारा मनुष्य (धर्म के) अर्थ को स्पष्ट देखता है।

२६० पञ्ञाय परिसुज्झति। सु
मनुष्य प्रज्ञा द्वारा ही शुद्ध होता है।

२६१ पञ्ञा हि सेट्ठा कुसला वदन्ति। जा
चतुर पुरुष प्रज्ञ को ही श्रेष्ठ बतलाते है।

२६२ पञ्ञाजीवी जीवितमाहु सेट्ठं। सु
प्रज्ञा पूर्वक जीवन को श्रेष्ठ कहा जाता है।

२६३ एको व सेय्यो पुरिसो सपञ्ञो जा
योभासितस्स विजानाति अत्थं ।
जो प्रज्ञावान् है सुभाषित के सार को समझता है वह अकेला ही (न समझने वालो की अपेक्षा) श्रेष्ठ है ।

२६४ बहूनं वत अत्थाय सप्पञ्ञो घरमावस । अं०
प्रज्ञावान् बहुतों के हित के लिए घर चलाता है ।

२६५ साकच्छाय पञ्ञा वेदितब्बा । उ
बात-चीत करने से ही प्रज्ञा जाननी चाहिए ।

२६६ तथात्तानं निवेसेय्य यथा भूरि पवड्ढति । ध
जिस प्रकार से प्रज्ञा बृद्धि को प्राप्त हो वैसा ही करे ।

२६७ पञ्ञं नप्पमज्जेय्य । उ
ज्ञान प्राप्ति से प्रमाद न करे ।

१४ पमाद वग्गो—प्रमाद-वर्ग

२६८ पमादो मच्चुनो पदं । भ
प्रमाद मृत्युपद का मार्ग है ।

२६९ पमादो रक्खतो मलं । अं०
चित-रक्षा करने वालों का मल प्रमाद है ।
(प्रमाद के कारण मनुष्य चित्त को संयमित नहीं कर सकते)

२७० पमादो गरहितो सदा । ध
पण्डित सदा प्रमाद की निन्दा करते हैं ।

२७१ पमादमनुयुञ्जन्ति बाला दुम्मेधिनो जना । ध
बाल दुर्बुद्धि लोग प्रमाद में लगते हैं ।

२७२ ते दीघरत्तं सोचन्ति ये पमज्जन्ति माणवा । म
जो युवक प्रमाद करते हैं वे दीर्घ काल तक चिन्तित होते हैं ।

२७३ ये पमत्ता यथा मता। ध
प्रमादी मरे हुओं के समान है।

२७४ मा पमादमनुयुञ्जेथ। ध
प्रमाद में मत लगो।

२७५ पमादेन न संवसे। व
आलसी व्यक्ति का संग न करें।

१५ पाप वग्गो—पाप वर्ग

२७६ मला वे पापका धम्मा अस्मिं लोके परम्हि च। ध
पाप इस लोक तथा परलोक में भी मल ही है।

२७७ दुक्खो पापस्स उच्चयो। ध
पाप का संचय दुःखद है।

२७८ पापानं अकरणं सुखं। ध
पाप का न करना सुख है।

२७९ पाप पापेन सुकरं। उ
पापी के लिए पाप करना बड़ा आसान है।

२८० पापे न रमती सुचि। उ
शुद्ध मनुष्य पाप करने में रत नही होते।

२८१ सकम्मुना हञ्ञति पापधम्मो। म
पापी अपने ही कर्म से नष्ट हो जाता है।

२८२ तपसा पजहन्ति पाप कम्मं। जा
मनुष्य कठोर प्रयत्न द्वारा पाप कर्म को त्याग देते हैं।

२८३ पापानि कम्मानि करोन्ति मोहा। म
अज्ञ पुरुष ही पापों को करते हैं।

२८४ नत्थि पापं अकुब्बतो । ध

(पाप) न करने वाले को पाप नहीं लगता ।

२८५ धम्मं मे भणमाणस्स न पापमुपलिम्पति । जा

जब मैं धर्म का कथन करता हूँ तो उस समय पापमुझे मलिन नहीं करता ।

२८६ नत्थि अकारियं पापं मुसावादिस्स जन्तुनो । ध

असत्यवादी पाप न करे यह सम्भव नही ।

२८७ पापानि परिवज्जये । ध

सभी पापों को छोड़ दो ।

२८८ न घासहेतूपि करेय्य पापं ।

भोजन के लिए भी पाप न करे ।

१६ पुग्गल वग्गो–पुद्गल वर्ग

२८६ साधु खो पण्डितो नाम । जा

पण्डित पुरुष सभी कार्यों में काम आते हैं ।

२६० पण्डितो जो सलिसम्पन्ना जलं अग्गवि भासति । दी

पण्डित जो शीलसम्पन्न है वह प्रज्वलित अग्नि के समान चमकता है ।

२६१ अनत्थं परिवज्जेति उत्थं गण्हाति पण्डितो । अं०

पण्डित वही है जो अनर्थ की बात को छोड़कर अर्थ की बात को ग्रहण करता है ।

२६२ इन्द्रियानि रक्खन्ति पण्डित । दी

चतुर मनुष्य अपनी इन्द्रियों की रक्षा करता है ।

२६३ न उच्चावचं पण्डिता दस्सयन्ति । ध

पण्डित जन विकार प्रदर्शन नहीं करते ।

२६४ निज्झत्तिबला पण्डिता । अं०
पण्डित दूसरों के दोषों पर ध्यान नही देते ।

२६५ दुल्लभो पुरिसाजञ्जो । ध
महापुरुष दुर्लभ है ।

२६६ दुल्लभो अगंसम्पन्नो । जा
गुणवान् पुरुष दुर्लभ है ।

२६७ दन्तो सेट्ठो मनुस्सेसु । ध
मनुष्यो मे दान्त (जिसने इन्द्रियों का दमन कर लिया है) श्रेष्ठ है ।

२६८ महाकारुणिको नाथो । स० म०
नाथ, भगवान् बुद्ध, महाकारुणिक है ।

२६९ कुसलो च जहाति पापकं । उ
चतुर पुरुष पाप करना छोड़ देता है ।

३०० नय नयति मेधावी । जा
मेधावी ठीक पथ-प्रदर्शन करता है ।

३०१ अधुरायं न युञ्जति । जा
प्रज्ञावान् अकरणीय कार्य में नहीं लगते ।

३०२ धीरो भोगे अधिगम्म सङ्गण्हाति च ञातके । जा
धीर पुरुष भोग सम्पत्ति प्राप्त कर बान्धवों का संग्रह करता है ।

३०३ धीरो च बलवा साधु यूथस्स परिहारको । जा
पण्डित पुरुष ही समाज का नेतृत्व करने में समर्थ है ।

३०४ न कामकामा लपयन्ति सन्तो । ध
सत्यपुरुष इन्द्रि-सुख संबंधी बातें नहीं करते ।

३०५ सन्तो न ते ये न वदन्ति धम्मं । सं
वे सत्पुरुष नहीं जो धर्म की बात नहीं बोलते ।

३०६ सन्तो सत्तहिते रता। जा
सत्पुरुष पर हित में लगे रहते हैं।

३०७ दूरे सन्तो पकासेन्ति। ध
सत्पुरुष दूर होने पर भी प्रकाशते हैं।
(सत्यपुरुष का यश दूर-दूर तक फैल जाता है)

३०८ सन्तो सग्गपरायना। सं०
सत्पुरुष स्वर्ग-गामी है।

३०९ सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवायति। ध
सत्पुरुष सभी दिशाओं में सुगन्ध बहाता है।

३१० उपसन्तो सुखं सेति। सं०
उपशान्त मनुष्य सुख से रहता है (सोता है)

३११ सतञ्च गन्धो पटिवातमेति। ध
सत्पुरुष की सुगन्ध उल्टी-हवा भी जाती है।

३१२ अनुपादा विमुच्चन्ति। अं०
किसी भी धर्म को 'अपना' करके व ग्रहण करने से मनुष्य
विमुक्त हो जाते हैं।

३१३ यो बालो मञ्ञति बाल्यं पण्डितो वापि तेन सो। ध
जो मूर्ख अपनी मूर्खता का समझता है, इसी कारण वह
पण्डित है।

३१४ न साधु बलवा बालो यूथस्स परिहारको। जा
मूर्ख समाज का नेतृत्व करने में असमर्थ।

३१५. बालो अपरिणायको। जा
मूर्ख नेता बनने के योग्य नहीं।

३१६ उज्झत्तिबला बाला। अं०
मूर्ख छिद्रान्वेषी होते है।

३१७ असन्तेत्थ न दिस्सन्ति । ध
असत्पुरुष पास में भी होने पर दिखाई नहीं देते ।
(असत्पुरुष का यश नहीं फैलता)

३१८ असन्तो निरयं यन्ति । जा
असत्पुरुष नरक गामी है ।

३१९ अनयं नयति दुम्मेधो । जा
दुर्बुद्धि अनुचित मार्ग पर ले जाता है ।

३२० अधुरायं नियुञ्जति । जा
मूर्ख अकरणीय कार्य को करता है ।

३२१ हापेति अत्थं दुम्मेधो । जा
दुर्बुद्धि अपने हित को भी नष्ट कर देता है ।

३२२ दुक्खिं करोति दुम्मेधो । जा
दुर्बुद्धि हानिकारक कर्म करता है ।

३२३ चोरा लोकस्मिमब्बुदा । सं०
चोर लोक के लिए हानिकारक है ।

३२४ सुविजानो भवं होति । सु
सुशिक्षित उन्नति शील होता है ।

३२५ दुविजानो पराभवो । सु
अशिक्षित नाश को प्राप्त होता है ।

३२६ धम्मकामो भवं होति । सु
धर्म की कामना करने वाले की वृद्धि होती है ।

३२७ धम्म देस्सी पराभवो । सु
धर्म से घृणा करने वाले का विनाश होता है ।

३२८ सक्कत्वा सक्कतो होति । जा
दूसरे का सत्कार करने वाला सत्कार पाता है ।

३२९ गरु होति सगारवो । जा
दूसरे का गौरव करने वाला गौरव पाता है ।

३३० पूजको लभते पूजं । जा
पूजा करने वाला स्वयं पूजित होता है ।

३३१ वन्दको पटिवन्दनं । जा
दूसरो की वन्दना करने वाला स्वयं वन्दित होता है ।

३३२ पटिसंखानबला बहुस्तुता । अं०
बहुश्रुत विचार शील होते हैं ।

३३३ साधु सम्बहुला ञाती । जा
बहुत सम्बन्धियों को होना सुखदायक है ।

३३४ विस्सासपरमा ञाति । ध
विश्वास सबसे बड़ा बन्धु है ।

३३५ नेकासी लभते सुख । जा
अकेले खाने वाला सुख प्राप्त नहीं करता ।

३३६ नत्थि लोके अनिन्दितो । ध
लोक में ऐसा कोई मनुष्य नहीं जिसकी निन्दा कभी न कभी न हुई हो ।

३३७ परिभूतो मुदु होती । जा
अयोग्य मनुष्य तिरस्कार पाता है ।

३३८ अतितिक्खो च वेरवा । जा
कठोर मनुष्य वैर उत्पन्न करता है ।

३३९ वहुम्पि रत्तो भासेय्य । जा
प्रेम में फँसा मनुष्य बहुत बढ़ कर बोलता है ।

३४० दुट्ठोपि बहु भासयि । जा
क्रोधित मनुष्य बहुत बोलता है ।

३४१ अनुपायेन यो अत्थं इच्छति सो विहञ्ञति। जा
अनुचित रीति से जो अपना उल्लू सीधा करना
चाहता है उसे परेशानी उठानी पड़ती है।

३४२ न उजुभूता वितथं भणन्ति। जा
सच्चरित कभी भी असत्य नहीं बोलते।

३४३ यथावादी तथाकारी। जा
जैसा बोले वैसा ही करे।

३४४ हिरिनिसेधो पुरिसो कोचि लोकास्मि विज्जति। जा
लोक में कोई ही मनुष्य ऐसा होता है जो अपने ही आप
लज्जा करके अकुशल कर्म नहीं करता।

३४५ कवि गाथानमासयो। सं०
कवि गाथाओं का आश्रय है।

३४६ ब्रह्माति मातापितरो। अं०
माता-पिता ही ब्रह्म है।

३४७ पुब्बाचरियाति वुच्चरे। अं०
माता-पिता ही प्रथम आचार्य हैं।

३४८ आहुनेय्या च पुत्तानं। अं०
माता-पिता पुत्रों के लिए पूजा के पात्र हैं।

३४९ इत्थी मलं ब्रह्मचरियस्स। सं०
ब्रह्मचर्य के लिए स्त्री मल है।

३५० इत्थी भण्डानमुत्तमं। स०
मनुष्य की सभी सम्पत्तियों में स्त्री का स्थान ऊँचा है।

३५१ भत्तञ्च गरुनो सब्बे पटिपूजेन्ति पण्डिता। अ०
चतुर स्त्री पति तथा पुजनीय व्यक्तियों की पूजा करती ।

३५२ भत्ता पञ्ञाणमित्थिया। सं०
पति से ही स्त्री की प्रतिष्ठा है।

३५३ सुस्सूसा सेट्ठा भरियानं। सं०
पत्नियों में आज्ञा कारणी श्रेष्ठ है।

३५४ यो च पुत्तानमस्सवो। सं०
पुत्रों में आज्ञाकारी पुत्र श्रेष्ठ है।

३५५ पुत्ता वत्थु मनुस्सानं। स०
पुत्र सभी लोगो की इष्ट वस्तु है (सभी लोग पुत्र चाहते है)

३५६ फातिं कयिरा अविहेठयं परं। जा
दूसरों की भलाई करे, दूसरों को दुःख न दे।

३५७ गुणवा चात्तनो गुणं। स० स०
गुणवान् अपने गुणों की रक्षा करे।

३५८ रक्खेय्यानागतं भयं। ना
संभाव्य दुःख को दूर करे।

१७ पुञ्ञवग्गो–पुण्य व

३५९ पुञ्ञं चोरेहि दूहर। सं०
चोर पुण्य को चुरा नहीं सकते।

३६० पुञ्ञं सुख जीवितसंखयम्हि। ध
मरते समय पुण्य सुखदायक होता है।

३६१ सुखो पुञ्ञस्स उच्चयो। ध
पुण्य का संग्रह सुखदायक है।

३६२ पुञ्ञानि परलोकस्मिं पतिट्ठा होन्ति पाणिनं। जा
पुण्य परलोक में प्राणियों के लिए आश्रय होता है।

३६३ पुञ्ञानि कायराथ सुखावहानि । सं०
पुण्य जोकि सदैव सुखदायक है करना चाहिए ।

१८ मच्चुवग्गो–मृत्युवर्ग

३६४ सब्बं भेदपरियन्त एवं मच्चानं जीवितं । सु०
मिट्टी के पात्र की भाति प्राणियों के जीवन का अन्त
हो जाता है ।

३६५ अप्पकञ्चिदं जीवितमाहु धीरा । सु०
पण्डित जीवन काल को अत्यल्प बताते हैं ।

३६६ न हि नो संगरन्तेन महासेनेन मच्चुना । जा
महासेन मृत्यु राज को टाला नहीं जा सकता ।

३६७ जरूपनीतस्स न सन्ति ताणा । जा
जरा कीओर जाते मनुष्यों का कोई त्राण नही ।

३६८ न मिय्यमानस्स भवन्ति ताणा । जा
मरते हुए को कोई बचा नहीं सकता ।

३६९ न मिय्यमानं धनमन्वेति किञ्च । म०
मरते हुए के पीछे धन नही जाता ।

३७० न चापि वित्तेन जरं विहन्ति । म
धन द्वारा बृद्धावस्था को रोका नही जा सकता ।

३७१ न दीघायुं लभन्ते धनेन । म
धन से कोई दीर्घायु नही हो सकता ।

३७२ सब्बे व निक्खिपिस्सन्ति भूता लोके समुस्सयं । सं०
सभी प्राणियों को अपना शरीर लोक में छोड़ना
ही पड़ता है ।

३७३ अड्ढा चेव दळिद्दा च सब्बे मच्चुपरायना। जा
धनी और निर्धन सभी मृत्यु के आधीन है।

१६ मित्त-वग्गो—मित्र वर्ग

३७४ सत्थो पवसतो मित्त। सं०
काफिला यात्री का मित्र है।

३७५ माता मित्तं सके घरे। स०स०
अपने घर में माता मित्र है।

३७६ सहायो अत्थजातस्स होति मित्तं पुनप्पुनं। सं०
सच्चा मित्र वही है जो बार-बार अवश्यकता पड़ने पर भी सहायता करता है।

३७७ सब्बत्थ पूजितो होति यो मित्तानं न दुब्भति। जा
जो मित्रों को हानि नहीं पहुंचाता (धोका नहीं देता) वह सर्वत्र पूजित होता है।

३७८ सब्बे अमित्ते तरति यो मित्तानं न दुब्भति। जा
जो मित्रों को धोका नहीं देता वह सभी दुश्मनों से बच जाता है।

३७६ मित्त दुब्भो हि पापको। जा
मित्र को धोका देने वाला निश्चय ही पापी है।

३८० पापमित्तो पापसखो पापाचारगोचरो। दी
बुरे मित्र बुरे सखा वाले का आचार तथा गोचर स्थान बुरा ही होता है।

३८१ भरिया परमा सखा। सं०
पत्नी परम मित्र है।

३८२ नत्थि बाले सहायता। ध
मूर्ख से मित्रता अच्छी नहीं।

३८३ अत्थम्हि जातम्हि सुखा सहाया। ध
काम पड़ने पर मित्र सुखदायक होते है।

३८४ सचे लभेथ निपक सहायं चरेय्य तेनत्तमनो सतिमा। म
यदि चतुर मित्र मिले तो उसके साथ स्मृति के साथ रहे।

३८५ नोचे लभेथ निपकं सहाय एकोचरे नचपापानि कायिरा। म
यदि चतुर मित्र न मिले तो अकेला रहे और पाप न करे।

२० याचना वग्गो–याचना वर्ग

३८६ न वे याचन्ति सप्पञ्ञा। जा
प्रज्ञावान् माँगते नहीं।

३८७ याचको अप्पियो होति। जा
माँगने वाला अप्रिय होता है।

३८८ याचं अददमप्पियो। जा
माँगने पर न देने वाला अप्रिय होता है।

३८९ देस्सो च होति अतियाचनाय। जा
अधिक माँगने वाला घृणा का पात्र होता है।

३९० न तं याचे यस्स पियं जिगिसे। जा
किसी की प्रिय वस्तु को न माँगे।

२१ राजवग्गो–राज वर्ग

३९१ राजा रट्ठस्स पञ्ञाणं। सं०
(राष्ट्रनायक) राजा के होने पर ही राष्ट्र कहा जाता है।

३६२ राजा मुखं मनुस्सानं । म
राजा राष्ट्र के प्रमुख हैं ।

३६३ सुब्बं रट्ठं सुख होति राजा चे होति धम्मिको । जा
राष्ट्र-नायक के धार्मिक होने पर सारा राष्ट्र सुखी होता है ।

३६४ कुद्धं अप्पटिकुज्झन्तो राजा रट्ठस्स पूजितो । जा
क्रोधित पर, क्रोध न करने वाला राजा राष्ट्र में पूजित होता है ।

३६५ सन्नद्धो खत्तियो तपति । ध
शस्त्रास्त्र से सुसज्जित राजा प्रकाशमान होता है ।

३६६ खत्तियो सेट्ठो जनेतस्मिं ये गोत्तपटि सारिनो । म
गोत्र जातपात माननें वालों मे राजा श्रेष्ठ है ।

३६७ पुत्तकं विय राजानो पजं रक्खन्तु सब्बदा । स०स०
राजा अपनी प्रजा का पुत्रवत् पालन करे ।

२२ वाचावग्गो-वाचावर्ग

३६८ हृदयस्स सदिसी वाचा (सदृश्य) जा
सत्पुरुष के मन और वाणी समान होते है ।

३६६ मोक्खो कल्याणिया साधु । जा
कल्याणकारी वचन बोलना अच्छा है ।

४०० मुत्वा तपति पापिकं । जा
अनुचित बोल कर मनुष्य शोक को प्राप्त होता है ।

४०१ दुट्ठस्स फरूसा वाचा । ज
क्रोधित की वाणी कठोर होती है ।

४०२ अभूतवादी निरयं उपेति । ध
असत्यवादी नरक में जाता है ।

४०३ संवोहारेन सोचेय्यं वेदितब्बं । ड
वाणी से (मानसिक) शुद्धता जाननी चाहिए ।

४०४ वाचं मुञ्चेय्य कल्याणिं । सं०
सुन्दर वाणी बोलें ।

४०५ सण्हं गिर अत्थवतिं पमुञ्चे । जा
कोमल तथा अर्थयुक्त वचन बोले ।

४०६ तमेव वाच भासेय्य यायत्तानं न तापये । सं०
वही वचन बोले जिससे शोक को प्राप्त न हो ।

४०७ मनुञ्ञमेव भासेय्य । जा
मधुर वचन बोले ।

४०८ नामनुञ्ञं कुदाचनं । जा
कभी भी कठोर वचन न बोले ।

४०९ वाच पमुञ्चे कुसल नातिवेल । जा
सुन्दर वचन भी अनावश्यक रूप से नही बोलना चाहिए ।

४१० न हि मुञ्चेय्य पापिकं । जा
बुरे शब्द नही बोलने चाहिए ।

२३ विरिय-वग्गो—वीर्य वर्ग

४११ कालागतञ्च न हापेति अत्थं । जा
परिश्रमी अवसर आने पर अपने हित को नष्ट नहीं करता ।

४१२ विरियेन दुक्खमच्चेति । सु
परिश्रम द्वारा दुख का अन्त किया जाता है ।

४१३ पटिरूपकारी धुरवा उट्ठाता विन्दते धनं। सु
कार्य व्यस्त उचित कार्य करने वाला धन प्राप्त करता है।

४१४ अकिलासु विन्दे हृदयस्स सन्तिं। जा
उद्योगी मनुष्य मन की शान्ति को पाता है।

४१५ न निब्बिन्दियकारिस्स सम्मदत्थो विपच्चति। जा
जो अनिच्छा पूर्वक काम करता है उसे सफलता नही मिलती।

४१६ अनिब्बिन्दियकारिस्स् सम्मदत्थो विपच्चति जा
उत्साह पूर्वक काम करनें वाले को सफलता मिलती है।

४१७ अथ पच्छा कुरुते योगं किच्चे आपासु सीदति। जा
जो प्रयत्न करने में पीछे रह जाता है वह विपत्ति में पड़ता है।

४१८ हिय्योति हिय्यति पोसो परोति परिहायति। जा
जो आज का काम कल पर छोडता है वह विनाश को प्राप्त होता है और परसो पर छोड़ने से और भी अधिक विनाश को प्राप्त होता।

४१९ अज्जेव किच्चमातप्पं। जा
आज ही कार्य करना चाहिए।

४२० वायमेथेव पुरिसो याव अत्थस्स निप्पदा। सं०
सफलता मिलने तक प्रयत्न करते रहो।

४२१ करेय्य योग्गं धुवमप्पमत्तो। जा
अप्रमादी सतत प्रयत्नशील रहे।

४२२ यथा यथा यत्थ लभेथ अत्थं तथा तथा तत्थ-परक्कमेय्य। जा
जिस प्रकार से कार्य सिद्ध हो उसी प्रकार प्रयत्न करना चाहिए।

२४ वैरवग्गो—वैर वर्ग

४२३ ये वेरं उपनऽहन्ति वेरं तेसं न सम्मति। ध
जो वैर बाँधते है उनका वैर शान्त नहीं होता।

४२४ ये वेरं नूपनऽहन्ति वेरं तेसूपसम्मति। ध
जो वैर नहीं बाँधते उनका वैर शान्त हो जाता है।

४२५ अवेरेन च सम्मन्ति। ध
वैर अवैर से ही शान्त होता है।

४२६ न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीधि कुदाचनं। ध
लोक में वैर से वैर कभी शान्त नही हो सकता।

२५ सच्च वग्गो—सत्य वर्ग

४२७ सच्चं हवे साधुतर रसानं। सु
सभी रसो में सत्य का रस सबसे अच्छा है।

४२८ सच्च वे अमता वाचा। सं०
सत्य वचन अमृत-बचन होता है।

४२९ सच्चेन कित्ति पप्पोति। सु
सत्य द्वारा कीर्ति-यश प्राप्त होता है।

४३० सच्चेन अत्थे च धम्मे च अहुसन्तो पतिट्ठिता। सु
सत्पुरुष सत्यता में प्रतिष्ठित होता है जो कि धर्म तथा हितकारी है।

४३१ सच्चमनुरक्खेय्य। उ
मनुष्य सत्य की रक्षा करे।

२६ सति वग्गो—स्मृति वर्ग

(३६)

४३२ सति लोकस्मिं जागरो। सं०
लोक में स्मृति जागृत करने वाली है।

४३३ सति सब्बत्थ पत्थिया। व०व०
स्मृति सर्वत्र इष्ट धर्म है।

४३४ सतिमतो सदा भद्दं। सं०
स्मृतिमान् सदैव उन्नतिशील होता है।

४३५ सतिमा सुखमेधति। सं०
स्मृतिमान् सुख पाता है।

४३६ सति मतो सुवे सेय्यो। स०
स्मृतिमान् सदैव अच्छा रहता है।

४३७ रक्खमानो सतो रक्खे। स०स०
रक्षा करने वाला स्मृति पूर्वक रक्षा करे।

२७ सद्धा वग्गो—श्रद्धा वर्ग

४३८ सद्धा बन्धति पाथेय्यं। सं०
श्रद्धा होने पर सभी दूसरे गुण आ जाते है।

४३९ सद्धा साधु पतिट्ठिता। सं०
सुप्रतिष्ठित श्रद्धा कल्याणकारी है।

४४० सुखा सद्धा पतिट्ठिता। ध
सुदृढ़ श्रद्धा सुखदायक है।

४४१ सद्धीध वित्तं पुरिस्स सेट्ठं। सं०
श्रद्धा ही लोक मे मनुष्यों का श्रेष्ठ धन है।

४४२ सद्धा दुतिया पुरिस्स होति। सं०
श्रद्धा मनुष्य का मित्र हैं।

२८ सन्तुट्ठी वग्गो—सन्तुष्टी (सन्तोष) वर्ग

४४३ सन्तुट्ठी परमं धनं। ध
सन्तोष परम धन है।

४४४ तुट्ठी सुखा या इतरीतरेन। ध
जो मिले उसी में सन्तुष्ट रहना सुखद है।

४४५ सुखो विवेको तुट्ठस्स सुतधम्मस्स पस्सतो। उ
सन्तुष्ट श्रुतधर्म को जाननेवाला एकान्त में सुख
का अनुभव करता है।

४४६ यं लद्धं तेन तुट्ठब्बं। जा
जो कुछ मिले उसी से सन्तोष करना चाहिए।

४४७ सलाभं नातिमञ्ञेय्य। ध
अपने लाभ की उपेक्षा नही करनी चाहिए।

२९ समण वग्गो—श्रमण वर्ग

४४८ समणाधि अरणा लोके। सु
बुद्ध शासन में श्रमण लोक के लिये हानि कारक नहीं होते।

४४९ नहि पव्बजिता परूपघाती समणो होतिपरं विहेठयन्तो। ध
दूसरो का घात करने वाला तथा सताने वाला श्रमण
ही होता।

४५० असञ्ञतो पव्वजितो न साधु। जा
संयम-रहित प्रव्रजित अच्छा नही।

४५१ अपेतो दमसच्चेन न सो कासावमरहति । ध
संयम और सत्य से रहित काषाय वस्त्र पहिनने योग्य नहीं ।

४५२ उपेतो दम सच्चेन स वे कासावमरहति । ध
जो संयम और सत्य से युक्त है वह काषाय वस्त्र
का अधिकारी है ।

४५३ सुभासितद्धजा इसयो । जा
ऋषियों की ध्वजा सुभाषित हैं ।

४५४ समणो अस्स सुस्समणो । बि
श्रमण होना है तो अच्छी तरह श्रमण भाव की रक्षा
करनी चाहिए ।

४५५ सामञ्ञे समणी तिट्ठे । स०स०
श्रमन-भाव में श्रमण को प्रतिष्ठित रहना चाहिए ।

३० सामग्गी वग्गो—एकता वर्ग

४५६ सुखा संघस्स सामग्गी । ध
सघ में एकता सुखद है ।

४५७ समग्गानं तपो सुखो । ध
एकीभूत हो प्रयत्न करना सुखदायक है ।

४५८ सब्बेसं संवभूतानं सामग्गी वुड्ढो साधिका । स०स०
एक हुओं की एकता बृद्धि का कारण है ।

३१ सील वग्गो—शील वर्ग

४५९ सीलं याव जरा साधु । ध
वृद्धावस्था तक शील का पालन लाभदायक है ।

४६० सुखं याव जरा सीलं । ध
शील का पालन वृद्धावस्था तक सुखदायक है ।

४६१ सीलं लोके अनुत्तरं । जा
शील के समान लोक में कुछ नहीं ।

४६२ सीलं किरेव कल्याणं । जा
शील ही का नाम अच्छाई (कुशल धर्म) है ।

४६३ संवासेन सीलं वेदितब्बं । उ
संवास से ही शील जाना जा सकता है ।

४६४ सञ्ञमतो सब्बत्थ संवरो । ध
संयम सभी जगह अच्छा है ।

४६५ सञ्ञमतो वेरं न चीयति । उ
संयम करने से वैर उत्पन्न नहीं होता ।

४६६ सीलं रक्खेय्य मेधावी । इति
बुद्धिमान् शील की रक्षा करें ।

३२ सुख वग्गो--सुख वर्ग

४६७ सब्बत्थ दुक्खस्स सुखं पहानं । ध
दुःख समुदय का सर्वत्र प्रहाण सुखदायक है ।

४६८ अब्यापज्झं सुखं लोके । उ
लोक मे व्यापद का न होना सुख का कारण है ।

४६९ तेसं वूपसमो सुखो । जा
संस्कारो का शान्त हो जाना सुख है ।

४७० नत्थि सन्ति परमं सुख । ध
शान्ति (निर्वाण) के समान सुख नहीं ।

४७१ निब्बानं परमं सुखं । ध
निर्वाण परम सुख है ।

४७२ सुखो बुद्धान उप्पादो । ध
बुद्धों का जन्म सुखदायक है ।

४७३ सुखा सद्धम्मदेसना । ध
सद्धर्म का उपदेश सुखदायक है ।

४७४ अदस्सनेन बालानं निच्चमेव सुखी सिया । ध
मूर्खों को न देखने से मनुष्य सदा सुखी रहता है ।

४७५ सुखं सुपति बुद्धो च येन मेत्ता सुभाविता । व०व०
जिसने अच्छी तरह से मैत्री भावना की है वह सुख
से सोता तथा उठता है ।

४७६ न वे अनत्थ कुसलेन अत्थचरिया सुखावहा । जा
जो अपनी भलाई करने में कुशल नही उसका
आचरण सुखदायक नही होता ।

३३ सेवन वग्गो—सहवास वर्ग

४७७ विस्सासा भयमन्वेति । जा
दूसरो पर अत्यधिक बिश्वास के कारण भय (आपत्ति)
उत्पन्न होता है ।

४७८ अतिचिरं निवासेन पियो भवति अप्पियो । जा
अत्याधिक सवा र से प्रिय भी अप्रिय हो जाता है ।

४७९ यं वे सेवति तादिसो । व०व०
जो जैसे पुरुष का संग करता है वह वैसा ही हो जाता है ।

४८० एकरत्तं द्विरत्तं वा दुक्खं वसति वेरिसु । जा
एक-दो रात भी वैरियो के साथ रहने में दुःख है ।

४८१ दुक्खो बालेहि संवासो अमित्तेनेव सब्बदा। ध
मूर्ख के साथ रहना शत्रु के साथ रहने के समान सदा
दुःख दायक है।

४८२ धीरो च सुख-संवासो ञातीनं व समागमो। ध
पण्डितो का सहवास बन्धुओं की भांति सुखद है।

४८३ सुखो हवे सप्पुरिसेन संगमो। जा
सत्पुरुष का सहवास सुखद है।

४८४ निहीयति पुरिसो निहीन सेवी। अं०
हीन के साथ सहवास से मनुष्य हीन हो जाता है।

४८५ दुक्खो बालेहि संगमो। जा
मूर्खो का सहवास दुःख-दायक है।

४८६ न संगमो पापजनेन सेय्यो। जा
पापी का सहवास अच्छा नही।

४८७ न पापजनसंसेवी अच्चन्तं सुखमेधति। जा
पापी का सहवास न करने वाला सदा सुखी रहता है।

४८८ बालसंगतचारी हि दीघमद्धान सोचति। ध
मूर्खो की संगति में रहने वाला दीर्घकाल तक शोक करता है।

४८९ यत्थु वेरी निवीसति न वसे तत्थ पण्डितो। जा
जहाँ वैरी रहता हो वहाँ पण्डित न रहे।

४९० संकेथेव अमित्तस्मिं। जा
शत्रू में संदेह करना योग्य है।

४९१ मित्तस्मिम्पि न विस्ससे। जा
मित्र में भी अधिक विश्वास न करें।

४९२ न विस्ससे अविस्सट्ठे । जा
अपरिचित व्यक्ति में विश्वास न करे ।

४९३ विस्सट्ठेपि न विस्ससे । जा
परिचित व्यक्ति में भी अधिक बिश्वास न करे ।

४९४ नास्मसे अलिकवादिने । जा
झूठ बोलने वाले में विश्वास न करे ।

४९५ नास्मसे कतपापम्हि । जा
पापी में विश्वास न करे ।

४९६ नास्मसे अत्तत्थपञ्ञम्हि । जा
स्वार्थी में विश्वास न करे ।

४९७ अतिसन्तेपि नास्मसे । जा
बनावटी शान्त पुरुष में विश्वास न करे ।

४९८ अपेतोचित्तेन न सम्भेजय्य । जा
विचार हीन व्यक्ति का सहवास न करे ।

४९९ न सन्थवं कापुरिसेन कयिरा । जा
पापी से मेल-जोल न करे ।

५०० नास्स बालेन संगच्छि अमित्तमेव सब्बदा । जा
मूर्ख का जो कि सदा शत्रू के समान है संगति न करे ।

— इति —

परिशिष्ट

१. अत्ता—शब्द का अर्थ आत्म अथवा आप है आत्मा नहीं बौद्धधर्मानुसार व्यक्तिव्य पचंस्कन्ध अर्थात् रुप, वेदना, सञ्ञा, संस्कार तथा विज्ञान का ममूह मात्र हैं रुपादि पाँचो स्कन्ध सतत परिवर्तन-शील है-आत्मा नाम की कोई नित्य अपरिवर्तनशील वस्तु नहीं।

२. जोति—प्रकाश, शमथ, विपश्यना की भावना करने पर चित्त प्रकाश स्वरुप हो जाता है क्योकि उस अवस्था मे मनुष्य सभी धर्मों के त्रिलक्षण अर्थात् अनित्यता, दुःखता या अनात्मा को समझ लेता है।

३. दमन—मनुष्य का सम्यक् व्यायाम की भावना अर्थात् अनुत्पन्न अकुशल धर्मो के अनुत्पाद के लिए, उत्पन्न अकुशल धर्मो के प्रहाण के लिए अनुत्पन्न कुशल धर्मो उत्पाद के लिए तथा उत्पन्न कुशल धर्मो की रक्षा के लिए प्रयत्न करना ही दमन करना है। इस चार प्रकार के प्रयत्न को क्रमश: संयम-प्रयत्न, प्रहाण-प्रयत्न, भावना-प्रयत्न तथा अनुरक्षण-प्रयत्न कहते है।

४. अर्हत्व—अकुशलमूल-लोभ, दोष, और मोह का अभाव ही अर्हत्व अथवा निर्वाण है। निर्वाण शरण है क्योंकि निर्वाण प्राप्त होने पर मनुष्य अष्टलोक धर्म अर्थात् लाभ-अलाभ यश-अयश, प्रशंसा-निन्दा और सुख-दुःख से कम्पित नही होता।

५. सुरक्षित—उपासक दान शील भावना के द्वारा सुरक्षित कहा जाता है। भिक्षु व्रत प्रतिव्रत (वत्त, परिवत्त) अर्थात् विनय सम्बन्धि नियमों का पालन करने तथा परियत्ति धर्म' अर्थात् बुद्ध देशित-धर्म को समझने के लिए रुचि रखने से सुरक्षित कहा जाता है।

६. चित्त-मल—पाँच नविरण कहे जाते है। पञ्च नविरण अर्थात् काम-छन्द, व्यापाद, स्त्यान-मृद्ध, औद्धत्य-कौकृत्य तथा विचिकित्सा के होने पर चित्त समाधिस्थ नहीं होता और चित्त के समाधिस्थ अथवा समाहित न होनें पर मनुष्य धर्मो के वास्तविक रूप को नही समझ सकता क्योकि ये पाँच नविरण वास्तविकता को ढक लेते है इसीलिए इनको चित्त मल अथवा नविरण कहा जाता है।

७. क्लेश—स्वयं संक्लिष्ट होने से तथा दूसरे भी धर्मो को सक्लिष्ट करने से १० धर्म अर्थात् लोभ, द्वेष, मोह, मान, दृष्टि, विचिकित्सा, स्त्यान, औद्धत्य अह्लीक तथा अनत्रपा क्लेश कहलाते है। ये ही दश क्लेश दुर्गति के कारण है।

८. अमृत-पद—निर्वाण अमृतपद है। क्योकि निर्वाण असंस्कृत अथवा हेतु-प्रभव अर्थात् हेतु से उत्पन्न नही, इसलिए निर्वाण-धर्म के लिए मृत्यु नही होने से अमृतपद कहा जाता है।

९. ददेति—अत्तान न ददेति परस्स दास कत्वा अत्तानं न ददेय्य। अर्थात् अपने को दास के रुप मे दूसरे को नही देना चाहिए।

१०. न परिच्चजे—न परिच्चजेति सोहव्यग्घादीनं न परिच्चजेय्य.... अर्थात् सिह इत्यादि जगंली पशुओं से बचे—अपना त्याग न करे। दूमरा अर्थ यह है कि मनुष्य को आत्म समर्पण (मार अर्थात् पाप धर्मो को) न करे।

११ अपना हित—इस सुभाषित का अर्थ स्वार्थता नही लगाना चाहिए। इस वचन को बुद्ध ने शमथ-विपश्यना की भावना करते समय दूसरे कार्यो के प्रति उपेक्षित भाव रखने के लिए कहा है। दूसरो के कार्य के लिए भावना में विघ्न डालना उचित नही ही है।

१२. दो अर्थ—इस लोक तथा परलोक में दोनो अर्थो को प्राप्त करता है ।

१३. अप्रमाद—अप्रमाद से तात्पर्य स्मृति अथवा चार स्मृति-प्रस्थानों से है । चार स्मृति-प्रस्थान है, कायानुस्मृति, वेदनानुस्मृति, चित्तानुस्मृति तथा धर्मानुस्मृति । स्मृति-प्रस्थान की भावना करने पर आर्य-अष्टागिक मार्ग की भावना पूरी होती है जिससे निर्वाण का साक्षात्कार होता है ।

१४. गति—दुर्गति अथवा सुगति की प्राप्ति प्राणियों के अपने-अपने कर्मो के अनुसार होती है ।

१५. सङ्कप्परागो—न ते कामा यानि चित्रानि लोके ।

सङ्कप्परागो पुरिसस्य कामो ।
तिट्ठन्ति चित्रानि तथेव लोके
अथेत्थ धीरा विनयन्ति छन्द

अर्थात् ससार मे सुन्दर पदार्थ (पाँच काम गुण-रुप, शब्द, घ्राण, रस तथा स्पृष्टव्य) काम नही । रागमुक्त मन हो जाना ही पुरुष का काम है । संसार मे सुन्दर पदार्थ वैसे पड़े रहते है, किन्तु पण्डित लोग उनमे इच्छा उत्पन्न नही करते ।

१६ गोचर—अर्थात् आलम्बन रुप, शब्द, घ्राण, रस, स्पृष्टव्य तथा धर्म (मन के विषय) ये छः आलम्बन है । इच्छा जहाँ-जहाँ प्रिय कान्त रूपादि होते है वहाँ-वहाँ अपना घर बना लेती है ।

१७. नदि—नदियो का पूरा भर जाना, जल का कम होना तथा सूख जाना समय-समय पर दिखाई देता है परन्तु तृष्णा का पूरा होना तथा सूख जाना अर्थात् न होना दिखाई नही देता केवल कमी दिखाई पड़ती है अर्थात् मानव जीवन मे सदैव अब इस वस्तु की कमी

है अब उस वस्तु की कमी है इस प्रकार तृष्णा की कभी पूर्ति नहीं होती ।

१८. मोह—अर्थात् मिथ्यादृष्टि । मनुष्य मिथ्यादृष्टियो मे इस प्रकार बंधा हुआ है कि उसका छुटकारा नही पाता इसीलिये मिथ्यादृष्टियों के जाल में फँसा मानव, जाल में फँसे पशु, पक्षी अथवा मछली की भाति दु:ख उठाता है ।

१९. ग्रह—यक्ष, अजगर अथवा मगरमच्छ केवल एक ही अत्त-भाव (आत्म-भाव) में पकड़ सकते है परन्तु द्वेष-भाव मनुष्य को जन्मजन्मान्तर तक पकड़ कर छोड़ता नही । अर्थकथा से ।

२०. अर्थ-धर्म—अर्थ-धर्म से तात्पर्य प्रतिसम्भिदाओ से है । प्रतिसम्भिदा चार है : अर्थ, धर्म, प्रतिभान तथा निरुक्ति । धर्मो के कारण को जानना अर्थ-प्रतिसम्भिदा तथा धर्मो के फल को जानना धर्म-प्रतिसम्भिदा कहा जाता है । जैसे कि तृष्णा से दु:ख होता है यहाँ तृष्णा मे ज्ञान अर्थ-प्रति-सम्भिदा तथा दु:ख में ज्ञान धर्म-प्रति-सम्भिदा है । क्रोधी मनुष्य हेतु-फल को नहीं समझता-यदि समझे तो वह क्रोध ही नही कर सकता ।

२१. क्षान्ति—शक्ति ऊष्णता कटु-वचन तथा प्रिय अप्रिय आलम्बनों (रूप शब्दादि छः आलम्बन) के प्रति उपेक्षा भाव रखना क्षन्ति कहा जाता है ।

२२. चित्त—शुद्धाशुद्ध चित्त के अनुसार सुगति-दुर्गति की प्राप्ति होती है ।

२३. सुशिक्षित—स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी तथा अर्हत् मार्ग द्वारा चित्त को क्रमशः शिक्षित किया जाता है ।

२४. सुरक्षित—अनुपादान अर्थात् किसी भी धर्म के मै, मेरा अथवा प्रिय-अप्रिय के रुप मै ग्रहण न करने से चित्त सुरक्षित रहता है।

२५. दान—एक प्रकार का युद्ध है क्योकि दान तभी दिया जाता है जब कृपणता पर विजय पाई जाती है। एक बार एक व्यक्ति ने भगवान बुद्ध को एक बस्त्र देने की इच्छा की परन्तु कृपणता के कारण तुरन्त न दे सका। एक तरफ बुद्ध के प्रति श्रद्धा और दूसरी ओर कृपणता दोनो के बीच अन्तर्द्वन्द्व हुआ जिसमें दो याम (आठ घन्टे) लगे। अन्त में श्रद्धा तथा दान-वृत्ति ने कृपणता पर विजय पाई।

२६. पच-स्कन्ध—रूप, वेदना, संज्ञा, सस्कार तथा विज्ञाण यही पाँच स्कन्ध है।

२७ संस्कार—जो धर्म संस्कृत है अर्थात् हेतु-प्रत्यय से अस्तित्व मे आते है वे दु:ख है क्योकि संस्कृत धर्म परिवर्तन शील है।

२८. धर्म—धर्म चार प्रकार का होता है

[१] गुणधर्म (कुशल कर्म) [२] देशना धर्म [३] परियत्ति-धर्म तथा [४] नि:सत्व-धर्म अथवा निर्जीव धर्म। इस सुभाषित मे नि:सत्व-धर्म तात्पर्य है। नि:सत्व-धर्म विज्ञान के अतिरिक्त ३ नाम धर्म है इन्हे चैनसिक भी कहते है। वेदना-स्कन्ध, संज्ञा-स्कन्ध तथा संस्कार स्कन्ध। वास्तव में वेदनादि स्कन्ध चित्त के साथ ही उत्पन्न होते है न पहले न पीछे; फिर भी मन को अगुआ कहा गया है इसको इस उपमा से समझना चाहिये जिस प्रकार चोरो का अगुआ (नेता) तथा उसके सहायक दूसरे चोर एक ही साथ मिलकर घर इत्यादि को लूटते है। चोरी का काम सभी एक साथ करते है परन्तु उनमे एक अगुआ होता है।

इसी प्रकार रूप आदि आलम्बन के चक्षु आदि द्वार पर आने पर चित्त के अतिरिक्त वेदनादि सभी धर्म उत्पन्न होते है परन्तु चित्त उनका अगुआ होता है। इसके अतिरिक्त चित्त सदैव उत्पन्न होता है परन्तु किसी अवसर पर कुछ चैतसिक उत्पन्न नही होते। चैतसिक वेदना संज्ञा को मिलाकर ५२ है। उदाहरणतः जब लोभ चैतसिक से सम्पयुक्त चित्त उत्पन्न होता है तो द्वेष चैतसिक चित्त के साथ उत्पन्न नही होता परन्तु चित्त हर समय उत्पन्न होता ही है इस नीयम से भी चित्त धर्मो का अर्थात् चैतसिकों का अगुआ है।

२९. सन्तो का धर्म—९ लोकोत्तर धर्मो से तात्पर्य है। नौ लोकोत्तर धर्म है

[१] श्रोतापत्ती मार्ग [२] श्रोतापत्ति फल [३] सकृदामी-माग [४] सकृदागामी-फल [५] अनागामी-मार्ग [६] अनागामी-फल [७] अर्हत्व-मार्ग [८] अर्हत्व-फल [९] निर्वाण

यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि अर्हत्व-फल और निर्वाण पर्यायवाची शब्द है परन्तु निर्वाण के दो भेद होते है सानुपादिशेषनिर्वाण तथा अनुपादिशेषनिर्वाण। अर्हत्व-फल से तात्पर्य सानुपादिशेषनिर्वाण से तात्पर्य है तथा अनुपादिशेषनिर्वाण से ही यहाँ 'निर्वाण' शब्द से तात्पर्य। इन नौ लोकोत्तर धर्मो को उपाघात के अभाव के कारण जरा को न प्राप्त होने वाले धर्म कहा जाता है।

३०. धर्म को चुनना—भगवान बुद्ध ने धर्म देशना नाना प्रकार से मनुष्यों के चरित्र अनुसार की है। सक्षेप मे चरित्र (चर्य्या) छः प्रकार की होती है राग चरित्र, द्वेष चरित्र, मोह चरित्र, श्रद्धा चरित्र बुद्धि चरित्र तथा वितर्क चरित्र। उदाहरणतः राग चरित्र

वाले को कायगतास्मृति आदि धर्म की भावना तथा द्वेष चरित्र को चार ब्रह्म-बिहार आदि की भावना अनुकूल है।

३१. सुचरित्रता—कुछ लोग दान-पुण्य करते हैं परन्तु साथ में यह अधिष्ठान भी करते है कि इस दान-पुण्य के प्रभाव से लौटरी (Lottery) निकल आए इसको कहा जाता है सुचरित्रता को ध्यान में न रखकर धर्माचरण कहना। ऐसा न कर धर्म के लिए ही धर्म का आचरण करना चाहिए-यही अर्थ है।

३२. अर्याष्टांग मार्ग—सम्यक् दृष्टि, सम्यक सकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति तथा सम्यक् समाधि यही आर्याष्टांगिक मार्ग के आठ अंग है।

३३. ह्री आपत्रपा—ये दोनो धर्म 'लोकपाल' कहे जाते है क्योंकि यदि लोग इन दो धर्मों के अनुसार चले तो कोई पाप न करें और फलस्वरूप दुख को प्राप्त न हों। ह्री का अर्थ है पाप करने में लजाना तथा अपत्रपा से तात्पय पाप करने में संकोच भय का अनुभव करने से है। ये दोनों धर्म शील के आधार है। यदि ये दोनों धर्म मन में न हो तो शीलों का पालन नहीं किया जा सकता। जिस मात्रा में मनुष्य में ये दो धर्म होते है उसी मात्रा में मनुष्य शीलों का पालन करता है।

३४. सनाथ अनाथ—जो मनुष्य धर्म पर आचरण करता है वह सनाथ कहलाता है क्योंकि धर्म उसको रक्षा करता है। धर्म पर आचरण न करने वाला अनाथ होता है।

३५. पुण्य—पुण्य-क्रिया-वस्तु १० प्रकार की होती है। किसी एक पुण्य क्रिया-वस्तु के करने से भी पुण्य (अच्छाई) क्रिया जाना सिद्ध होता है। १० पुण्य क्रिया वस्तु इस प्रकार है :— १ दानमय

२ शीलमय ३ भावनामय ४ अपचायंनमय (विनीत भाव) ५ वेय्यावच्चमय (कुशल कार्य मे हाथ बॉटना) ६ पत्तिदानमय (पुण्य को दूसरो मे विभाजित करने की भावना) ७ पत्तानुमोदनामय (दूसरे की पुण्य चेतना की अनुमोदना) ८ धर्मश्रवणमय ९ धर्मदेशनामय तथा १० दृष्टिऋजु कर्म मय (मिथ्या दृष्टि छोड़ सम्यक् दृष्टि अपनाना) इस प्रकार दान शील भावना आदि धर्मो द्वारा मनुष्य पुण्य कमाता है अर्थात् अपने में कुशल धर्मो का संग्रह करना है ।

३६ स्मृति—स्मृति से तात्पर्य कुशल अकुशल धर्मो का सदैव ध्यान रखना। स्मृति जागृत करने वाली है क्योंकि स्मृति मान पुरुप कुशल अकुशल धर्मो का ध्यान रखते हुए सदैव सचेत रहता है और अकुशल कर्म नहीं करता ।

शुद्धिपत्र

सुभाषित नं० ६, १३, ३८, ४७, ५०, ५४, ५५, ५८, ५६, ६०, ६७, ७३, ७७, ७८, ८४, ६२, ६५, ६७, ६६, १०३, १०६, १२१, १२२, १३१, १३४, १३६, १४३, १४५, १४६, १४८, १५०, १५२, १६०, १६५, १६१, २३६, २८८, ३००, ३८५, ४०५, ४०६, ४०६ मे क्रमश :—[परम, नाथ, यदिद, य, त, पटिकार, य—त, कालानुरूप—धुर, साधुं, किच्च, दुक्ख, धम्मान, देह, अन्नन, य, कुसल, अनत्थ, आयसक्य, अत्थ, दीप-किञ्चन, परम, सुखावह, सुखावह, सब्बदान, सब्बदुक्ख, जित, दान, दद, न, सुख, पूनग्ग, दान, अकिञ्चन, सत, दुल्जभ, त, पाप, नय, सहाय, गिर, वाच, वाच-कुसल—नातिवेल] सभी शब्दो के अन्तिम अक्षरो पर अनुस्वार होना चाहिए जैसे परम—परमं, नाथ-नाथं

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
प्राक्कथन	शरद, वरोरस, निबन्ध	शब्द, वरोरस, निबन्ध
ग	उपाज्झाय, पवरेस, ढग	उपज्झाय, पवरेस, ढंग
सुभाषित नं०		
१२	सुब्बता, सुब्रर्ता,	सुब्बता, सुब्रती
१५, १७, १७	अत्तान्ञ्चे, परियोदपेय्य	अत्तानञ्च परियोदपेय्य
२३, २६	वाला, अप्पमादू	वाले, अप्पमाद
३५	अप्पमत्ते, अनर्थो	अप्पमत्तो, अर्थो
४६	परम दुक्कर, है।	परमदुक्करं, है
७३, ७७	परिपन्यो, बाली,	परिपन्था, वाली
८२	अनत्थजननो	अनत्थजननो
६७	कोध सम्मदसम्मत्तो	क्रोधसभ्मदसम्मत्तो
६८, १००	सहार्या पस्सति	सहायी, न पस्सति
१०१, १०२	बिय, दड्ढोब	विय, दड्ढोव
१०५, १०७	कुधजातो, दमेन	कोधजातो, पञ्ञाय
१०८, १२०	कौवस्स, गाम; दमयो	कोधस्स, गमि; दमथो

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
११७, ११८	चित्त पाटिकखा	चित्ते पाटिकङ्खा
१२४	अत्तना उजकमंसु	अत्तनो उजुकमंसु
१३५, १४३	अवजिय्यन्ति, सुततप्पसत्थं	अपजिय्यति, सुगतप्पसत्थं
१५७	दद्विद्दियदुक्खं	दठि्ठद्दियं दुक्खं
१६७ १६६	सब्धि, सब्वेसं	सब्भि, सब्बेसं
१७२, १८२	धम्मचारी, आर्याष्टांग	धम्मचारिं, आर्याष्टांगिक
१८२	सब्वकिलेसेहि, निब्वुति	सब्बकिलेसेहि, निब्बुति
१८३	सब्बकिलेसेहि, निब्बुति	सब्बकिलेसेहि, निब्बुति
१८५, १८८	संस्कुत, नत्यि	संस्कृत, नत्थि
१८६	आरोग्य परमा लाभ	आरोग्यपरमा लाभा
२०२	मत्तञ्जुता	मत्तञ्ञुता
१९१, १९२	सम्बद्धानं, उपन्चगा	सम्बुद्धानं, उपच्चगा
२००, २०३	का, ओत्ताप्पयञ्ञेव	की, ओत्तप्पियञ्ञेव
७, २१०	सतयुरुप, का पुरुषता	सत्पुरुष कुपुरुष
२१५, २१७	असञ्झाय, कोसञ्जं	असज्झाय, कोसजं
२२३, २३२	पकुब्बता, अकुतूहं	पकुब्बतो, अकुतूहलं
२२६, २२९	वम्मिकोवूपचायति, शीनं	वम्मिकोवूपचीयति, थीनं
२२७	पारगवोसिनो, जरिति	पारगवेसिनो, जीरति
२३४, २४०, २५९	शामो, नात्थ पञ्ञायत्यं	थामो, नत्थि, पञ्ञायत्थं
२६४, २६६	धरमावस, तथात्तानं	धरमावसं, तथत्तानं
२८८, २९१	वग्गा, उत्थं	वग्गो, अत्थं
२९०	सलिसम्पन्ना, अग्गवि	सीलसम्पन्ना, अग्गीव
२९२, २९५	पण्डिंत, पुरिसाजञ्ञी	पण्डिता, परिसाजञ्ञो
२९६, ३१२	अगंसम्पन्नो, विमुञ्चति	अंगसम्पन्नो, विमुच्चति
३१४, ३३२	असमर्थ ।, बहुस्तुता	असमर्थ है ।, बहुस्सुता
३३७, ३४९	होती, ब्रह्मचरिस्स	होति, ब्रह्मचरियस्स
३५९, ३६०	गपुण्य व, पुञ्ञं	पुण्य वर्ग, पुञ्ञं

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
३६३, ३६६	कार्यंराथ, किञ्च	कयिराथ किञ्चि
३७३, ३७६	दद्विथा, अत्यजातस्स	दठि्ठद्दा अत्थजातस्स
३६५, ३६८, ४१४	शाम्रास्य, हृदयस्स	शस्राम्र, हदयस्स
४११, ४१५	विरि, विपश्चति	विरिय, विपच्चति
४१७, ४१८	सदिति, परोति	सीदति, परेति
४२२, ४२३	परक्कमेय्य, वैरवग्गो	परक्कमेय्य, वेरवग्गो
४२३, ४२४	उपनऽहन्ति, नूपनऽहन्ति	उपनरहन्ति, नूपनय्हन्ति
४३०	सच्चेन, अहुसन्तो	सच्चे, अहु सन्तो
४३६, ४४२	सति मतो का	सतिमतो, की
४४८, ४४६	समरणधि, ही	समरणोध, नही
४४६	नहि परूपघाती होतिपरं	न हि परूपघाती हाति प र
४५०, ४५५	पव्वजितो, समणी	पब्बजितो, समणो
४५६, ४५८	सघ, वुडढी साधिका	संघ, बुड्ढो साधिका
४६४, ४७०	सञ्चमतो परमं	साधु, परं
४८३, ४८४	संगमो, निहीन सेवी	संगमो, निहीनसेवी
४६२, ४६६	अविस्सट्टे, सन्यवं	अविस्सट्ठे, सन्थवं
५००	नास्स	नास्सु

—: परिशिष्ठ :—

५	प्रतिव्रत, परिवत्त सम्बन्धि	प्रतिव्रत, परिवत्त सम्बन्धी
८	नविरण, अथवा	नीवरण अथवा
१५, २१	पुरिसस्ग, रागसुक्त, क्षन्ति	पुरिसस्स, रागयुक्त क्षान्ति
१७	नदि	१६ नदी
१६	गोचर	१७ गोचर
२८, २६	नयिम, उपघात	नियम, उपघात
३२	अर्यष्टाग, अग	आर्याष्टांगिक, अग
३३, ३६	तात्पय स्मृति मान	तात्पर्य स्मृतिमान